BED IV- PE 7

योग शिक्षा

Yoga Education

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-90-9
BED IV- PE 7 (BAR CODE)

आई एस बी एन. 978-81-931534-4-4

गुरुर्गुरुतमो धाम
NCTE
राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्
(भारत सरकार की एक विधिक संस्था)
हँस भवन, खण्ड-2, 1 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002

लोक शिकायतें/वर्चुअल कॉल सैंटर निःशुल्क नम्बर : 1800 110 039

दूरभाष: 0091-11-23370178, 23370141, 23370170
फैक्स: 0091-11-23370116, 23379980
E-Mail: cp@ncte-india.org, ms@ncte-india.org
Website: www.ncte-india.org

योग शिक्षा (बी. एड. कार्यक्रम)

योग शिक्षा

बी. एड. कार्यक्रम

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्
(भारत सरकार की एक विधिक संस्था)

गुरुर्गुरुतमो धाम
NCTE

राअशिप

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थापना संसद के अधिनियम (1993 का 73वां) के तहत हुई थी, जिसे देश भर में अध्यापक शिक्षा प्रणाली में मानकों और मानदंडों के नियमन और समुचित रखरखाव हेतु अध्यापक शिक्षा के नियोजित और समन्वित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने का जनादेश प्राप्त है। राअशिप 17 अगस्त 1995 को अस्तित्व में आई थी।

राअशिप द्वारा मान्य कार्यक्रम

राअशिप ने निम्नलिखित अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए 28 नवम्बर, 2014 को संशोधित विनियमों और मानकों व मापदंडों को अधिसूचित किया था।

- पूर्व बाल शिक्षा कार्यक्रम में 2 वर्षीय डिप्लोमा, जिससे *विद्यालय पूर्व शिक्षा में डिप्लोमा* (डीपीएसई) प्राप्त किया जा सकता है।
- 2 वर्षीय प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम, जिससे *प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा* (डी.एल.एड) प्राप्त किया जा सकता है।
- 4 वर्षीय प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा स्नातक कार्यक्रम, जिसमें *प्रारंभिक शिक्षा में स्नातक* (बी.एल.एड) की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 2 वर्षीय स्नातक शिक्षा कार्यक्रम, जिसमें *शिक्षा स्नातक* की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 2 वर्षीय स्नातकोत्तर शिक्षा कार्यक्रम, जिसमें *शिक्षा में स्नातकोत्तर* की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 2 वर्षीय शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा कार्यक्रम, जिसमें *शारीरिक शिक्षा में डिप्लोमा* (डी.पी.एड.) प्राप्त किया जा सकता है।
- 2 वर्षीय शारीरिक शिक्षा स्नातक कार्यक्रम, जिसमें *शारीरिक शिक्षा में स्नातक* (बी.पी.एड.) की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 2 वर्षीय शारीरिक शिक्षा स्नातकोत्तर कार्यक्रम, जिसमें *शारीरिक शिक्षा में स्नातकोत्तर* की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- मुक्त व दूरस्थ शिक्षण प्रणाली के माध्यम से 2 वर्षीय प्रारंभिक शिक्षा डिप्लोमा कार्यक्रम, जिसमें *प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा* (डी.एल.एड.) की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- मुक्त तथा दूरस्थ शिक्षण प्रणाली के माध्यम से 2 वर्षीय शिक्षा स्नातक कार्यक्रम, जिसमें *शिक्षा स्नातक* (बी.एड.) की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 2 वर्षीय कला–शिक्षा *डिप्लोमा* (दृश्य कला) कार्यक्रम, जिसमें *कला–शिक्षा* (दृश्य कला) में डिप्लोमा प्राप्त किया जा सकता है।
- 2 वर्षीय कला–शिक्षा *डिप्लोमा* (निष्पादन कला) कार्यक्रम, जिसमें *कला–शिक्षा* (निष्पादन कला) में डिप्लोमा प्राप्त किया जा सकता है।
- 4 वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम जिसके फलस्वरूप *बीएड/बीएससी बीएड (एकीकृत) डिग्री* दी जाती है।
- 3 वर्षीय (अंशकालीन) शिक्षा स्नातक कार्यक्रम, जिसमें *शिक्षा स्नातक* (बी.एड.) की उपाधि प्राप्त की जा सकती है।
- 3 वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम जिसके फलस्वरूप *बी.एड. एम.एड. (एकीकृत) डिग्री* दी जाती है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद
(भारत सरकार का एक विधिक निकाय)

योग शिक्षा
(शिक्षा स्नातक)

इकाई 1
योग तथा यौगिक क्रियाओं का परिचय 11

इकाई 2
योग ग्रंथों का परिचय 51

इकाई 3
योग और स्वास्थ्य 73

इकाई 4
प्रायोगिक अनुदेशन 99

योग शिक्षा

(शिक्षा स्नातक–बी.एड.)

(आईएसबीएनः 978–81–931534–4–4)

विशेषज्ञ सलाहकार समिति

प्रो. एच.आर.नागेन्द्र, कुलाधिपति, एनवीवाईएएसए विश्वविद्यालय, बंगलौर (*अध्यक्ष*)
स्वामी आत्मप्रियानन्द, कुलपति, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूर, पश्चिम बंगाल
प्रो. जी.डी. शर्मा, विभागाध्यक्ष, योगविज्ञान विभाग, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार
डॉ. स्वामी मंगलतीर्थम, बिहार योग विद्यापीठ, मुंगेर, बिहार
श्री ओ.पी. तिवारी, सचिव, कैवल्यधाम, लोनावाला, एसएमवाईएम समिति, पुणे
डॉ. ईश्वर वी. बसवारेड्डी, निदेशक, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
डॉ. राजवी एच. मेहता, मुख्य वैज्ञानिक, आयंगर योगाश्रय, लोवर परेल, मुम्बई
डॉ. चिन्मय पांड्या, उपकुलपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

कार्यक्रम विकास

प्रो. संतोष पांडा, अध्यक्ष, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली *(परियोजना निदेशक)*
प्रो. बी.एस. डागर (सेवानिवृत्त), महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा *(परियोजना समन्वयक)*

लेखक

डॉ. आर.एस. भोगल, कैवल्य धाम, लोनावाला, एसएमवाईएम समिति, पुणे (इकाई 2–4)
सुश्री करूणा नागराजन, एस–व्यास विश्वविद्यालय, बैंगलोर (इकाई 1)

अनुवादकर्ता

श्री एम.डी. शर्मा, डब्ल्यु.जेड. 313बी, जी ब्लॉक, आशा पार्क, हरिनगर, नई दिल्ली (इकाई 1–3)
श्री नागेश्वरनाथ, ए–1/155, सैक्टर 16, रोहिणी, नई दिल्ली (इकाई 4)

सम्पादक

डॉ. ईश्वर वी. बसवारेड्डी, निदेशक, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
प्रो. बी.एस. डागर (सेवानिवृत्त), महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
डॉ. साधना आर्य, अतिथि प्राध्यापक, एमडीएनआईवाई

सम्पादक हिंदी रूपांतरण

प्रो. बी.एस. डागर (सेवानिवृत्त), महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज (सेवानिवृत्त), 28–29, जैन कॉलोनी पार्ट–2, उत्तम नगर, नई दिल्ली

कॉपी सम्पादन

प्रो. बी.एस. डागर (सेवानिवृत्त), महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

मुद्रण उत्पादन (प्रिंट प्रोडक्शन)

डॉ. राकेश तोमर, अवर सचिव (शैक्षिक), राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली
श्री पीयूष, मालवीय नगर, नई दिल्ली (*डिजाइनर*)

कार्यालयीन सहायता

श्रीमती कनिका ढ़िल्लों, निजी सहायक, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली
श्री अमरदीप शाही, डी.ई.ओ., राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली

© दिसम्बर 2015, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली
आईएसबीएनः 978–81–931534–4–4

सर्वाधिकार सुरक्षित। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली से लिखित अनुमति के बिना इस कार्य के किसी भी भाग की नकल से या किसी अन्य रूप में प्रतिकृति नहीं बनाई जा सकती है।

*राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की ओर से **श्री जुगलाल सिंह,** सदस्य सचिव, द्वारा प्रकाशित।*

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के विषय में कोई अन्य सूचना राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद कार्यालय, हंस भवन, विंग–II, 1, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली–110002 भारत से प्राप्त की जा सकती है। वेबसाइटः http://www.ncte-india.org.

आवरण सज्जाः **श्री के. विश्वनाथन**, नई दिल्ली

मुद्रणः सैंट जोसेफ प्रैस, नई दिल्ली
ई–मेलः stjpress@gmail.com
मूल्यः ₹ 400/ (विद्यार्थी संस्करणः ₹ 200/)

विषय–सूची

	पृष्ठ
प्राक्कथन...	5
आमुख..	6
आभारोक्ति...	8
मॉड्यूल के सम्बन्ध में..	9
मॉड्यूल विवरण	
मॉड्यूल के उद्देश्य	
मॉड्यूल की इकाइयां	
इकाई 1: योग तथा यौगिक क्रियाओं का परिचय	11-50
1.1 प्रस्तावना	
1.2 अधिगम उद्देश्य	
1.3 योगः अर्थ तथा सूत्रपात	
1.4 योग के विकास का इतिहास	
1.5 अष्टांग योग या राज योग	
1.6 योग की धाराएं	
1.7 योग के दो संप्रदायः राज योग और हठ योग	
1.8 स्वस्थ जीवनचर्या के लिए यौगिक क्रियाएं	
1.9 कुछ चुनिंदा यौगिक क्रियाएं	
1.10 सारांश	
1.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप	
इकाई 2: योग ग्रंथों का परिचय	51-72
2.1 प्रस्तावना	
2.2 अधिगम उद्देश्य	
2.3 एक अनुशासन के रूप में योग का औचित्य	
2.4 योग और यौगिक ग्रंथों का वर्गीकरण	
2.5 पतंजलि के अष्टांग योग को समझना	
2.6 हठ योग परम्परा	
2.7 पतंजलि योग और हठ योग के बीच संपूरकता	
2.8 पतंजलि योग सूत्र में 'ध्यान' संबंधी प्रक्रियाएँ	
2.9 सारांश	
2.10 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप	
इकाई 3: योग और स्वास्थ्य	73-98
3.1 प्रस्तावना	
3.2 अधिगम उद्देश्य	
3.3 रचनात्मक स्वास्थ्य हेतु योग की आवश्यकता	
3.4 प्राचीन योग साहित्य के अनुसार रचनात्मक स्वास्थ्य में मन की भूमिका	
3.5 स्वास्थ्य, चिकित्सा, और रोग की संकल्पनाः यौगिक दृष्टिकोण	
3.6 खराब स्वास्थ्य के संभावित कारण	
3.7 स्वस्थ रहने के यौगिक सिद्धांत (आहार, विहार, आचार, विचार)	
3.8 स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए योग का समेकित दृष्टिकोण	
3.9 योग और यौगिक आहारीय विचार से तनाव प्रबंधन	
3.10 सारांश	
3.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप	

इकाई 4: प्रायोगिक अनुदेशन 99-138
4.1 प्रस्तावना
4.2 अधिगम उद्देश्य
4.3 नवशिक्षुओं के लिए योगाभ्यास हेतु सामान्य दिशा निर्देश
4.4. प्रायोगिक योग सत्र के आयोजन के लिए सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के निमित्त कुछ चुनिन्दा योगाभ्यास
4.5 सारांश
4.6 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाएं

संस्थाबद्ध प्रशिक्षण हेतु दिशानिर्देश 139
पारिभाषिक शब्दावली 140
पठन-सुझाव 142
विचारणीय प्रश्न 143
कार्यकलाप के सांकेतिक उत्तर 144

प्राक्कथन

ऐसे अध्यापकों की भूमिका को जो परिवर्तन के प्रणेता के रूप में विवेक और सहिष्णुता को प्रोत्साहित करते हों और बच्चों की शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार लाते हों, कदापि अतिशयोक्ति के रूप में नहीं देखा जा सकता है। इसके लिए ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो व्यावसायिक दृष्टिकोण से सक्षम होने के साथ–साथ समाज की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी और प्रतिसंवेदी हों, जो अभिप्रेरणा, समुपयुक्त ज्ञान और कौशल से ऊर्जस्वित हों और जो अपने जीवन एवं अन्य व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक सोच को प्रदर्शित करते हों, ऐसे अध्यापक जिनके चरित्र में सत्यनिष्ठा एवं आध्यात्मिकता के वैयक्तिक गुण विद्यमान हों।

ऐसी स्थिति में सर्वाधिक आवश्यक यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारे अध्यापकों व अध्यापक–प्रशिक्षकों के व्यक्तित्व और विशेषतः उनकी अभिवृत्तियां इस प्रकार रूपांतरित हो जाएं कि वे बच्चों व किशोरों के व्यक्तित्व व अभिवृत्तियों में अपेक्षित विकास करने में सहायक हो सकें; ऐसा विकास जो स्वस्थ व शांतिपूर्ण जीवन यापन को सुखद बना सकें और साथ ही साथ जब वे बड़े हों तो वे समाजिक व राष्ट्रीय विकास तथा वैश्विक सद्भाव के लिए अपना प्रभावी योगदान दे सकें। इसमें शिक्षकों के लिए क्षेत्र–विशिष्ट ज्ञान और अभिक्षमता के साथ साथ सामाजिक/जीवनोपयोगी कौशलों को विकसित किया जाना भी शामिल है। इन्हीं कारणों तथा इनसे संबंधित अन्य कारणों से ही राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई) ने अध्यापक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों में नए सिरे से बदलाव लाने का प्रयास किया है और देश के सभी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में योग शिक्षा को एक अनिवार्य अध्ययन क्षेत्र के रूप में शामिल किया गया है।

इस संबंध में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई) की भूमिका स्वाभाविक रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि योग मानव के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से सत्यापित पद्धति है, और यह मानव की अधिकांश व्याधियों एवं आधियों को निर्मूल समाप्त करने में रामबाण औषधि सिद्ध हो सकता है। योग–विज्ञान की तकनीकों का यदि नियमित रूप से और भलीभांति अभ्यास किया जाए तो इससे तनाव और चिन्ता, आशंका और भय, परिताप और नैराश्य से मुक्ति मिल सकती है, अन्यथा यदि ये लंबे समय तक चलते रहें, तो इनसे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं, जिनसे आज का मानव पीडित है। योग जीवन शैली के अन्य आध्यात्मिक आयाम भी हैं।

डी.एल.एड, बी.एड. और एम.एड. पाठ्यचर्याओं के लिए योग शिक्षा पर विकसित इन तीनों मॉड्यूलों का उद्देश्य समाज की इस बृहद् अपेक्षा की पूर्ति करना हैं कि अध्यापक–प्रशिक्षकों व अध्यापकों के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण व समेकित विकास हो, ताकि वे क्रमशः बच्चों के समेकित व सर्वांगीण विकास को प्रभावित करने में अपना योगदान दे सकें।

मैं, एनसीटीई की ओर से विशेषज्ञ सलाहकार समिति (और विशेष रूप से प्रो. एच.आर. नागेन्द्र – समिति के अध्यक्ष), लेखक, संपादक, इस कार्य से सहयोजित अन्य अधिकारी/कर्मचारीगण, प्रो. भीम सिंह डागर (इस परियोजना के समन्वयक) और श्री जुगलाल सिंह, सदस्य सचिव, एनसीटीई के प्रति धन्यवाद प्रकट करता हूं जिन्होंने इस लक्ष्य को समय पर पूरा किया है।

नई दिल्ली
दिसम्बर 15, 2015

संतोष पांडा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद,
नई दिल्ली

आमुख

अध्यापकों की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जानेवाली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अध्यापक विद्यार्थियों में सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने, उनमें जिज्ञासा की वृद्धि करने, उनकी सृजनात्मक क्षमता को जाग्रत करने, विवेक और सहिष्णुता को बढ़ावा देने, बालकों को अपने स्वयं के साथ साथ वे जिस परिवेश व वातावरण में रहते हैं उसकी सूझबूझ रखने में सहायता प्रदान करने और अन्त में उनमें नैतिक चेतना, संवेदनशीलता और समाज की आवश्यकता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इसलिए ठीक ही कहा जाता है कि कोई भी राष्ट्र अपने शिक्षक के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता है। लेकिन विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इन सभी योग्यताओं को कक्षा में अन्तरित किया जाता है?

आज देश में अध्यापकों को तैयार करने वाली संस्थाओं की वस्तुस्थिति उपर्युक्त आदर्श स्थिति से बिल्कुल इतर और दुःखद एवं नैराश्यपूर्ण है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या ढांचा (नेशनल अध्यापक शिक्षा करिकुलम फ्रेमवर्क, 2009) में स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया गया है कि घटिया स्तर की निजी अध्यापक शिक्षा संस्थाएं कुकुरमुत्ते की तरह फैल रही हैं जिनसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा (2005) और निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (2009) के उद्देश्यों की पूर्ति करने के मार्ग में गंभीर खतरा उत्पन्न होता दिखाई दे रहा है। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य हो जाता है कि उन संघटकों को शामिल करने के लिए जिनसे अध्यापक के व्यक्तित्व का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके, विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों में नए सिरे से बदलाव लाया जाए।

मुझे यह उल्लेख करते हुए अति प्रसन्नता हो रही है कि कुछ समय पहले ही राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने अध्यापक शिक्षा को एक नया रूप प्रदान करने के लिए नए विनियम, 2014, विभिन्न संशोधित प्रतिमान और मानक लागू कर एक बहुत ही साहसिक, समुपयुक्त, और पारदर्शी कदम उठाया है। इन संशोधित विनियमों के अन्तर्गत, सभी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यचर्या ढांचे तथा पाठ्यक्रमों में अपेक्षित परिवर्तन लाए गए है। यह बड़े ही संतोष की बात है कि योग शिक्षा को सभी, 18,000 से अधिक अध्यापक शिक्षा संस्थाओं, जिनमें 3 लाख से अधिक शिक्षक प्रशिक्षक कार्यरत हैं और जहां 14 लाख से अधिक भावी अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता है, एक अनिवार्य रूप से लागू किया गया है। ऐसा पहली बार हुआ है कि देश में सभी अध्यापक–प्रशिक्षकों, और प्रशिक्षुओं के लिए योग शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर अनिवार्य बनाया गया है। एनसीटीई और उन सभी व्यक्तियों को जो इस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाते रहे हैं, विशेष रूप से अध्यक्ष प्रो. पांडा को मैं हार्दिक बधाई देता हूं। एनसीटीई द्वारा मान्यता प्राप्त सभी 15 अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए योग शिक्षा से संबंधित विस्तृत पाठ्यक्रम और अधिगम मॉड्यूल बनाने के लिए गठित एनसीटीई की **विशेषज्ञ सलाहकार समिति** की अध्यक्षता करते हुए भी मुझे हर्ष हो रहा है।

योग अधिगम का एकमात्र क्षेत्र है जिसमें मानव के व्यक्तित्व के समग्र विकास को संपन्न करने की क्षमता है। योग की जडें भारतीय संस्कृति और परंपराओं में स्थापित हैं और यह किसी अन्य शैक्षणिक अनुशासन की भांति ही वैज्ञानिक विधि और विषय वस्तु पर आधारित है। इसके दावे भौतिकी या आयुर्विज्ञान की ही तरह सत्यापनीय व प्रामाणिक हैं। उपर्युक्त के दृष्टिगत, एनसीटीई ने ऐसी अधिगम सामग्रियों को विकसित करने का विचार किया है, जो सर्वाधिक प्रामाणिक और पंथनिरपेक्ष हो तथा किसी भी साम्प्रदायिक पूर्वग्रह से सर्वथा परे हो। इन मॉड्यूलों में सम्मिलित सामग्री पंथनिरपेक्षवाद और लोकतंत्र के मानदंडों को पूरा करती है और अधिकांश मामलों में इनकी शोध आधारित प्रामाणिकता है। इन अध्ययन सामग्रियों को देश के विभिन्न भागों से और विभिन्न योग विचार मंचों से योग शिक्षा के सुविख्यात विद्वज्जनों से मिलकर बनी विशेषज्ञ सलाहकार समिति के मार्गदर्शन में तैयार किया गया है।

प्रत्येक मॉड्यूल को विभिन्न अध्ययन–इकाइयों में विभक्त किया गया है जिनसे मुख्य विचार को सैद्धांतिक आधार मिलता है।

प्रत्येक मॉड्यूल की अंतिम इकाई अभ्यास पर आधारित है। अंतिम इकाई जिसे ''प्रायोगिक अनुदेशन'' की संज्ञा दी गई है, में आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा या क्रिया (षट् कर्म) को मुद्राओं के ग्राफिक्स या चित्र के माध्यम से क्रमबद्ध रूप से चरण वार बताया गया है। संबंधित योगाभ्यास की प्रक्रियाओं के साथ–साथ सावधानी या विशेष अनुदेश, यदि कोई हो, का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है ताकि साधक, किसी

कुशल अभ्यासकर्ता के मार्गदर्शन में स्वयं भी योगाभ्यास कर सके। अपेक्षित होने पर विधि और निषेध भी दिया गया है।

इस विषय सामग्री को स्व–अधिगम रूप में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि योग शिक्षकों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे सदैव, विशेष रूप से प्रातःकाल और संध्या समय, जो योग की तकनीक के अभ्यास हेतु सर्वाधिक उपयुक्त समय है, उपलब्ध रहें।

अध्ययन की प्रत्येक इकाई उसकी प्रस्तावना से आरंभ होती है। उसके बाद विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण से पूर्व इसके अधिगम उद्देश्यों को प्रेक्षणीय अथवा परीक्षणीय रूप से दर्शाया गया है। तत्पश्चात् आभ्यंतरिक अभ्यास/क्रियाकलाप हैं जिनसे योग की तकनीक को सुगमता से समझने में सहायता मिलती है। मॉड्यूल के अन्त में प्रत्येक क्रियाकलाप के लिए कुछ सांकेतिक उत्तर दिए गए हैं। प्रत्येक इकाई के लिए जिज्ञासा का भाव उत्पन्न करने और उस पर चिन्तन करने के लिए कुछ विचारणीय प्रश्न दिए गए हैं। किसी भी इकाई के संक्षिप्त दर्शन हेतु प्रत्येक इकाई के अंत में इकाई का सार संक्षेप दिया गया है।

प्रायोगिक अनुदेशन संबंधी इकाई में सामान्य दिशानिर्देश दिए गए हैं, साथ ही उन मार्गदर्शी सिद्धांतों पर विशेष बल दिया गया है, जो उस मुद्रा विशेष से संबंधित है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन मॉड्यूलों के अध्ययन के पश्चात् अध्यापक–प्रशिक्षकगण और भावी अध्यापकों के व्यक्तित्व में अवगम्य बदलाव परिलक्षित होगा। इसके फलस्वरुप वे अधिक सुखी व स्वस्थ व्यक्ति बन सकेंगे तथा पूर्ण विश्वास के साथ और बहुत ही प्रभावी ढंग से अध्यापन व अधिगम का कार्य निष्पादित कर पाएंगे। अध्यापक–प्रशिक्षकों के साथ साथ कक्षा में प्रविष्ट होने वाले प्रशिक्षुगण भी अपने स्वयं के जीवन में योग शिक्षा का वरण कर इसका अभ्यास कर पाएंगे, व साथ ही अपने विद्यार्थियों के लिए योगाभ्यास की प्रक्रिया को सहज रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे।

आइए, हम सभी एक जुट होकर योग शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर सफल बनाएं।

नई दिल्ली
दिसम्बर 15, 2015

एच.आर. नागेन्द्र
विशेषज्ञ सलाहकार समिति के अध्यक्ष
कुलाधिपति, स्वामी विवेकानंद योग
अनुसंधान संस्थान विश्वविद्यालय,
बैंगलोर

आभारोक्ति

डी.एल.एड., बी.एड., और एम.एड. कार्यक्रमों के लिए योग मॉड्यूल तैयार किया जाना दूरूह कार्य रहा है यद्यपि इस कार्य से सम्बद्ध सभी व्यक्तियों ने अपने सुन्दर और अपार अनुभव से इसे अप्रतिम बनाने के लिए अपना बृहत्तर योगदान दिया है। डी.एल.एड के लिए इस मॉड्यूल को तैयार करने के पश्चात् हम गुरुजी प्रो. एच.आर नागेन्द्र, कुलाधिपति, स्वामी विवेकानन्द योग अनुसंधान संस्थान विश्वविद्यालय, बेंगलूरु और विशेषज्ञ सलाहकार समिति के अन्य सदस्य यथा स्वामी (डा.) आत्मप्रियानंद, कुलपति, रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय, बेलूरमठ; स्वामी (डा.) मंगलतीर्थम, पूर्व में बिहार योग विद्यालय, मुंगेर से सहयोजित; श्री ओ.पी. तिवारी, सचिव, कैवल्यधाम, लोनावला, पुणे; डा. ईश्वर वी. बसवा रेड्डी, निदेशक, मोरारजी देसाई, राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली; डा. राजवी मेहता, मुख्य वैज्ञानिक, आयंगर योगाश्रम, मुम्बई; डा. चिन्मय पांड्या, उप–कुलपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार; प्रो. जी.डी. शर्मा, विभागाध्यक्ष, योग विभाग, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार के प्रति गहरा आभार व्यक्त करना चाहते हैं। इन मॉड्यूलों को तैयार करने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में सुझाव देने और विस्तृत पाठ्यचर्या तैयार करने में सलाहकार समिति वस्तुतः एक प्रेरणास्रोत की भूमिका में रही, इससे समुपयुक्त मार्गदर्शन मिलता रहा।

इस मॉड्यूल की रचना का श्रेय डॉ. आर.एस. भोगल (केवल्यधाम लोनावला) और सुश्री करुणा नागराजन (स्वामी विवेकानंद योग अनुसंधान संस्थान विश्वविद्यालय, बैंगलोर) को जाता है। इन दोनों को हमारा विशेष धन्यवाद है। इन दोनों ने इन मॉड्यूलों को तैयार करने में दिन रात परिश्रम किया है। इसके अलावा सम्पादक डॉ. ईश्वर वी. बसवारेड्डी को विशेष धन्यवाद जिन्होंने इस कार्य को अंतिम रूप से तैयार करने हेतु हर प्रकार की सहायता और मार्गदर्शन दिया है।

एनसीटीई मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान (एनडीएनआईवाई) नई दिल्ली के प्रति विशेष रूप से हार्दिक आभार प्रकट करती है चूंकि उन्होंने इस मॉड्यूल में प्रयोग हेतु वास्तविक चित्रों की प्रतियां, जिनमें विभिन्न योगाभ्यासों की मुद्रा दर्शाई गई है, हमें उपलब्ध कराई। इस कार्य के लिए हमारे पास शब्द नहीं है कि हम इस संस्थान के प्रति विशेष रूप से संस्थान के निदेशक डा. बसवा रेड्डी के प्रति कैसे आभार प्रकट करें। संस्थान के निदेशक ने पूरी प्रक्रिया में राष्ट्र हित, महत्त्व और उपयोगिता वाले इस उद्यम में सदैव हमारा यथोचित मार्गदर्शन किया है।

हम डा. राकेश तोमर, अवर सचिव (शैक्षणिक), जिन्होंने इस मॉड्यूल को तैयार करने के लिए अपेक्षित प्रशासनिक कार्य में विभिन्न तरीके से सहायता प्रदान की, के प्रति भी आभारी हैं। एनसीटीई श्री के. विश्वनाथन ग्राफिक आर्टिस्ट के प्रति भी कृतज्ञता अर्पित करती है, जिन्होंने बहुत सांकेतिक और सृजनात्मक रूप में आवरण पृष्ठ तैयार किया है जिससे इस मॉड्यूल के स्वरूप में निखार आया है।

विशेषरूप से श्री अमित कुमार के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिन्होंने पृष्ठ विन्यास और मॉड्यूल की संरचना में अपने कौशल का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। सुश्री कनिका ढ़िल्लों और श्री अमरदीप शाही के प्रति भी हम धन्यवाद और आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने सभी प्रकार की सचिवालयी और प्रशासनिक सहायता प्रदान की जिसके बिना इतने कम समय में इस कार्य को संभवतः पूरा नहीं किया जा सकता था।

अध्यक्ष और अपनी ओर से, प्रो. बी.एस. डागर का विशेष धन्यवाद जिन्होंने अकेले ही सभी मॉड्यूल को तैयार किए जाने में संचालक व मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हुए चेयरपर्सन के परामर्श से सम्पूर्ण कार्य का बहुत ही बारीकी से अध्ययन किया है और विशेषज्ञ सलाहकार समूह, लेखक, संपादक डिजाइनर और मुद्रक के बीच सुन्दर समन्वय स्थापित करते हुए इस भागीरथ कार्य को सम्पन्न किया है। उन्होंने कार्य में अपनी कर्मनिष्ठा और विशेषज्ञता के द्वारा इस सामग्री को ग्राह्य एवं उपयोगी बनाकर महान् कार्य किया है। इसके लिए वे विशेष साधुवाद के पात्र हैं।

एनसीटीई की ओर से और स्वयं मेरी ओर से, प्रो. संतोष पांडा, अध्यक्ष, एमसीटीई के प्रति हमारा आभार जिन्होंने इस कार्य के समापन सहित एनसीटीई में बहुत से सुधारों और अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यकलाप में अपना अप्रतिम योगदान दिया है और जो सच्चे अर्थ में हमारे प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

नई दिल्ली
दिसम्बर 15, 2015

जुगलाल सिंह
सदस्य सचिव,
राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद,
नई दिल्ली

मॉड्यूल के संबंध में

योग शिक्षा संबंधी इस मॉड्यूल में आपका स्वागत है, आपके बी.एड. पाठ्यचर्या का यह एक विशेष घटक है और इसे समस्त अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्याओं में एक आवश्यक घटक के रूप में पहली बार शामिल किया जा रहा है। जैसा कि आप जानते हैं कि योग का मूल प्राचीन भारतीय संस्कृति और सम्यता में विद्यमान है और जिसका उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्यक विकास रहा है। इसका प्रभाव व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों और पहलुओं पर – चाहे वह व्यक्तिगत हो अथवा सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक, मानसिक, व्यवहार संबंधी और स्पष्ट रूप से कहा जाए तो नैतिक और आध्यात्मिक सभी पक्षों पर पड़ता है। योग का अभ्यास यदि नियमित रूप से और व्यवस्थित रूप से किया जाए तो निश्चित ही व्यक्ति का रूपांतरण एक सक्रिय व्यक्तित्व के रूप में हो जाता है, जो ऊर्जा और उत्साह से भरपूर होता है। इससे आपको शान्ति, संतुष्टि, प्रशान्ति, आत्मनियंत्रण, रोगों की प्रतिकारक क्षमता प्राप्त होती है और समग्र स्वास्थ्य विकसित होता है, स्मरण शक्ति तीव्र होती है, एकाग्रता बढ़ती है और मन रचनात्मक या सृजनात्मक हो जाता है।

यही कारण है कि अध्यापक और अध्यापक शिक्षकों को योग के क्षेत्र में पहल करने की आवश्यकता है जो आज विश्व भर में एक जीवन पद्धति के रूप में मान्य तथा स्वीकार्य है और सर्वत्र उसका अभ्यास किया जाता है।

दूसरी बात यह है कि यह सत्य पर आधारित है और योग के संदेश को प्रसारित करने और इसे एक जन आंदोलन के रूप में तैयार करने हेतु अध्यापकों से बढ़कर कोई एजेंसी नहीं हो सकती और अध्यापक ही सबसे प्रभावशाली होता है इसलिए अध्यापक शिक्षा में योग को शामिल करना आवश्यक है।

इसलिए योग शिक्षा के शैक्षिक महत्त्व की दृष्टि से बी.एड. कार्यक्रम से संबंधित योग शिक्षा को दो क्रैडिटों की भारिता दी गई है जो एक आधे पाठ्यक्रम के समकक्ष है। तत्पश्चात् इसे बराबर महत्त्व देकर सैद्धांतिक घटक और प्रायोगिक अनुदेशन के रूप में विभाजित किया गया है। क्योंकि प्रायोगिक अनुदेशन के लिए अधिक अध्ययन और अभ्यास समय की आवश्यकता है इसलिए इस पाठ्यक्रम को दिए गए कुल 48 अध्ययन घंटों में 16 घंटे सिद्धांत के लिए तथा 32 प्रायोगिक अनुदेशन के लिए निर्धारित किए हैं। प्रायोगिक पक्ष में जो समय दिया जाता है वह यौगिक क्रियाओं के अभ्यास के लिए है, जैसे आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्राएं। इसमें अन्य संबंधित अथवा प्रायोगिक गतिविधियों को करने के लिए भी समय दिया गया है जैसा कि इस पाठ्यसामग्री में उल्लेख किया गया है।

इस मॉड्यूल में कुल चार इकाइयां हैं (तीन सैद्धान्तिक और एक प्रायोगिक अनुदेशन)। इन चार इकाईयों को निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है:

मॉड्यूल उद्देश्य

इस मॉड्यूल को पढ़कर आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- प्राचीन युग से लेकर योग के विकास के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कर सकेंगे।
- विवेचना कर सकेंगे कि योग और योगाभ्यास स्वस्थ जीवन के लिए किस प्रकार महत्त्वपूर्ण हैं।
- योग के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अष्टांग योग के विभिन्न भागों का वर्णन कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के योग का वर्णन कर सकेंगे।
- हठ योग और अष्टांग योग किस प्रकार एक दूसरे के संपूरक हैं, स्पष्ट कर सकेंगे।
- षट्कर्म के नाम बता सकेंगे तथा शरीर और मन की स्वच्छता में इनका उपयोग कैसे होता है, स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रमुख आसनों और प्राणायाम क्रियाओं को निदर्शित कर सकेंगे।

- स्पष्ट कर सकेंगे कि योगाभ्यास स्वास्थ्य के लिए इतना आवश्यक क्यों है और किस प्रकार।
- विवेचना कर सकेंगे कि स्वस्थ रहने के लिए किस प्रकार की अभिवृत्ति और आहार आवश्यक है।

उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अध्ययन संबंधी निम्नलिखित इकाइयों को शामिल किया गया है।

इकाई 1

इस मॉड्यूल की प्रथम इकाई को "योग और योगाभ्यास का परिचय" नाम दिया गया है। इस इकाई में योग की धारणाओं और सिद्धान्तों को आध्यात्मिक विकास संबंधी विज्ञान के रूप में निदर्शित किया गया है। इसमें योग के दो प्रमुख संप्रदाय हैंः पतंजलि योग और हठ योग। इस इकाई में पांच प्राणिक घटकों पर विचार–विमर्श किया गया है जो मनुष्य के शरीर संबंधी क्रियात्मक पहलुओं के संचालन के लिए अनिवार्य हैं जैसे प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान। इसके अलावा इस इकाई में योग क्रियाओं की प्राचीन पद्धति पर भी विचार किया गया है जिसमें अष्टांग योग तथा हठ योग संबंधी क्रियाएं हैं जैसे आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्राएं और बंध।

इकाई 2

दूसरी इकाई का शीर्षक "योग ग्रंथो का परिचय" है, जिसमें पतंजलि और हठ योग के व्यापक और प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायक यौगिक ग्रंथो के बारे में बताया गया है। अष्टांग योग के बारे में पतंजलि योग सूत्र नामक एक प्राचीन संहिता है जिसके चार पाद हैं – समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद तथा कैवल्य पाद। इस इकाई में पतंजलि के विचारों को बताया गया है जैसे पतंजलि का क्रिया योग। हठयौगिक सामग्री के बारे में इस इकाई में हठ प्रदीपिका, जो स्वामी स्वात्माराम द्वारा रचित ग्रंथ है, का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, जिसके अंतर्गत बहुत सी हठयौगिक क्रियाएं सम्मिलित हैं। स्वात्माराम द्वारा दी गई यौगिक क्रियाओं के क्रम में आसन, प्राणायाम, मुद्रा और नादानुसंधान शामिल हैं। इसके अलावा हठ योग से संबंधित अन्य ग्रंथ भी हैं जैसे घेरंड संहिता जिसमें अलग–अलग प्रकृति की 100 से अधिक यौगिक क्रियाएं हैं। इसमें विशेष रूप से शुद्धि (षट्कर्म) पर जोर दिया गया है।

इकाई 3

''योग और स्वास्थ्य'' नामक इस इकाई का उद्देश्य स्वास्थ्य और योग के संबंध को स्पष्ट करना है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा पारिभाषित स्वास्थ्य संबंधी आधुनिक अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद इकाई में यह बताया गया है कि योग स्वास्थ्य की देखभाल करने के मामले में कितना निवारक या रोधक कार्य कर सकता है तथा यदि योग की क्रियाओं को उचित रूप से और नियमित रूप से किया जाए तो इससे स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सुख और शांति लाई जा सकती है। इस संदर्भ में इकाई के अंतर्गत पंचकोष की अवधारणा तथा सकारात्मक स्वास्थ्य प्राप्त करने में इसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में समग्र स्वास्थ्य सुनिश्चित करने में योग की भूमिका क्या हो सकती है, इसको भी बताया गया है।

इकाई 4

इकाई 4 प्रायोगिक अनुदेशन से संबंधित है। योग का उद्देश्य तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता है जब तक योग की विभिन्न क्रियाएं जैसे आसन, प्राणायाम, शुद्धि क्रियाएं, बंध क्रियाएं आदि को प्रायोगिक रूप से न किया जाए। इस उद्देश्य की दृष्टि से विभिन्न यौगिक क्रियाओं को क्रमबद्ध रूप से स्पष्ट किया गया है ताकि अभ्यासकर्ता (साधक) विधियों को पूर्ण रूप से सीख सके, इसमें जो सावधानियां होनी चाहिए, उन्हें क्रियाओं को करने से पहले देख लें। योगाभ्यासों की प्रत्येक क्रिया को स्पष्ट रूप से पारिभाषित किया गया है। इस इकाई में सामान्य दिशानिर्देश भी प्रस्तुत किए गए है जैसे विधि और निषेध आदि। क्रियाओं की पद्धति के बारे में और अधिक स्पष्टीकरण सुनिश्चित करने के लिए क्रमशः चित्रों को रखा गया है जिनमें विभिन्न प्रकार के आसन–मुद्राओं को शामिल किया गया है और उनसे संबंधित दिशा–निर्देश भी बताए गए हैं जो क्रियाओं/तकनीकों से संबंधित हैं।

इकाई 1: योग और योगाभ्यास का परिचय

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 अधिगम उद्देश्य
1.3 योगः अर्थ तथा सूत्रपात
  1.3.1 योग की परिभाषा
  1.3.2 योग के विषय में भ्रान्तियां
  1.3.3 योग का आधार
1.4 योग के विकास का इतिहास
  1.4.1 वैदिक काल में योग
  1.4.2 पूर्व–प्राचीन काल में योग
  1.4.3 प्राचीन काल में योग
  1.4.4 मध्यकाल में योग
  1.4.5 आधुनिक काल में योग
  1.4.6 योग के मूल स्रोत की ओर प्रेरित करने वाले मनोवैज्ञानिक पहलू
1.5 अष्टांग योग या राज योग
  1.5.1 योग के उद्देश्य एवं लक्ष्य
  1.5.2 यौगिक क्रियाएंः क्या करें और क्या न करें
1.6 योग की धाराएं
  1.6.1 कर्म योग
  1.6.2 भक्ति योग
  1.6.3 राज योग
  1.6.4 ज्ञान योग
1.7 योग के दो संप्रदायः राज योग और हठ योग
1.8 स्वस्थ जीवनचर्या के लिए यौगिक क्रियाएं
1.9 कुछ चुनिंदा यौगिक क्रियाएं
  1.9.1 आसन
  1.9.2 बन्ध
  1.9.3 क्रियाएं (षट्कर्म)
  1.9.4 प्राणायाम
1.10 सारांश
1.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

1.1 प्रस्तावना

इस तथ्य के बावजूद कि मनुष्य का तद्रूप स्वभाव आनंदमय होता है, तथापि प्रायः व्यक्ति अपने इस मूल स्वभाव से इतने भटक जाते हैं कि वे अपनी पहचान अपने मन, शरीर और पदार्थिक वस्तुओं के साथ कर लेते हैं। वे मौलिक सत्य की अवहेलना करते हैं और इस प्रकार इस अवास्तविक पहचान से हम स्वयं को अपूर्ण, सीमित, दुःखद और असहाय महसूस करते हैं। योग से लोगों को इस अज्ञान से दूर होने का मार्ग मिलता है और वे अपने वास्तविक दिव्य आत्मतत्त्व के प्रति सजग होने लगते हैं। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को उन अपूर्णताओं से मुक्त कराना और उन्हें उच्चतम वैश्विक आत्मतत्त्व से मिलना है।

योग से मनुष्य को उसके पशुत्व से मुक्त करके पूर्णता की बुलन्दियों तक ले जाने की तकनीकें ही नहीं मिलती, बल्कि जीवन का मार्ग भी इससे प्रशस्त होता है। योग जीवन का वह पथ है, जिसमें शांति, प्रशांति, सामंजस्य और स्वास्थ्य, प्रेम और आनन्द, परिशुद्धता और सक्षमता निहित होती है। इस प्रकार के आनन्दमय जीवन के लिए यह प्रेरणा किसी मनुष्य रूपी जीव का अविवेकी प्रयास नहीं है। यह प्रेरणा

विवेक सम्मत, प्रसन्नता और सामंजस्य की सही समझ है तथा प्रसन्नता बढ़ाने की अनुकूल मानक प्रणाली का एक व्यावहारिक पहलू है। यह प्रेरणा और मानदण्ड प्राकृतिक नियम द्वारा निर्धारित हैं।

1.2 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- व्याख्या कर सकेंगे कि योग शिक्षा व्यक्ति के जीवन के लिए क्यों महत्त्वपूर्ण है।
- पतंजलि के अनुसार योग को पारिभाषित कर सकेंगे;
- योग के विषय में कुछ भ्रांतियों की पहचान कर सकेंगे;
- युग–युगांतर से योग के विकास के बारे में पता लगा सकेंगे;
- राजयोग और हठयोग के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- पाँच यमों और पाँच नियमों की सूची बनाकर उन्हें स्पष्ट कर सकेंगे;
- आसन, प्राणायाम और क्रियाओं सहित कम से कम छः यौगिक क्रियाओं का नाम बताकर उनका अभ्यास कर सकेंगे; और
- स्वस्थ जीवन–यापन में उपयोगी, विभिन्न यौगिक क्रियाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे।

1.3 योगः अर्थ तथा सूत्रपात

योग शब्द संस्कृत की मूल क्रिया (युज्) से बना है, युज का अर्थ है जोड़ना (युज्यते अनेन इति योगः)। योग जोड़ने (सम्बद्ध करने) का कार्य करता है। वे कौन से तत्त्व हैं जो सम्बद्ध होते हैं? पारंपरिक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि इसमें व्यष्टि स्वत्व का समष्टि स्वत्व के साथ मेल है, अर्थात् यह एक अहंकारपूर्ण व्यक्तित्व का एक सर्वव्यापक, शाश्वत और यथार्थ की आनन्दमय अवस्था के रूप में विस्तार है।

पतंजलि का योग दर्शन भारतीय छः दर्शनों में से एक दर्शन है। पतंजलि एक महान ऋषि थे, जिन्होंने लगभग 4000 वर्ष पूर्व (जैसाकि कुछ प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकारों ने बताया) योग की आवश्यक विशेषताओं और सिद्धान्तों (जो पहले योग उपनिषदों के रूप में थे) को 'सूत्रों' के रूप में संकलित किया जो योग के क्षेत्र में यह एक महान् योगदान है। पतंजलि के अनुसार योग मन पर विजय प्राप्त करने की एक चैतन्य प्रक्रिया है।

भगवद्गीता और उपनिषदों में वर्णित योग का क्षेत्र काफी व्यापक है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है 'यह (योग) किसी के कायिक अस्तित्व के विकास को किसी एकल जीवन अथवा कुछ महीनों या थोड़े से घंटों में संपीडित करने का एक साधन है।' साधारणतया समस्त सृजन में प्रकृति से अन्योन्य क्रियाओं के कारण विकास की प्रक्रिया चलती है। किन्तु इस प्राकृतिक विकास में हजारों और लाखों वर्ष लग सकते हैं, पशुओं में यह लम्बी और जटिल प्रक्रिया होती है। मनुष्य को विवेक शक्ति, चैतन्य, सोचने–विचारने का संकाय, मन (बुद्धि) और समुचित रूप से विकसित स्वैच्छिक नियंत्रण प्रणालियां उपलब्ध हैं, जो इस विकास (वृद्धि) में तीव्रता ला सकती हैं। योग वह व्यवस्थित चैतन्य प्रक्रिया है, जिससे मनुष्य के विकास की प्रक्रिया बहुत कम समय में पूरी की जा सकती है।

श्री अरविन्दो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तरों पर चहुँमुखी व्यक्तित्व के विकास पर जोर देते हैं। योग से उनका तात्पर्य हैः व्यक्ति में अव्यक्त क्षमताओं के विकास द्वारा आत्म–पूर्णता की ओर एक व्यवस्थित प्रयास। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे कमियां और अपूर्णताएं दूर हो जाती हैं और व्यक्ति एक महामानव के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार योग किसी व्यक्ति की उसके विकास को पूर्णता तक पहुँचाने की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है। इस विकास से व्यक्ति चेतना के

उच्च स्तर पर जीना सीख जाता है। इस प्रकार योग व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास और वृद्धि तथा मानसिक संवर्धन की कुंजी है।

1.3.1 योग की परिभाषा

योग – मन पर विजय प्राप्त करना

जैसा कि पहले बताया गया है कि पतंजलि ने अपने द्वितीय सूत्र में योग को '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध**': (योग सूत्र : 1.2) के रूप में पारिभाषित किया है। योग मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। नियंत्रण में दो पहलू होते हैं– किसी वांछित विषय अथवा वस्तु पर ध्यान को एकाग्र करने की शक्ति और लम्बे समय तक शांत रहने की क्षमता। पहले पहलू, यानी एकाग्रता को हम विकसित कर रहे हैं किन्तु मनुष्य की दूसरी क्षमता मौन और शांत रहने का कार्य कभी–कभी ही हो पाता है। इसलिए योग में इस दूसरे पहलू पर मुख्य रूप से जोर दिया गया है। '**योग वासिष्ठ**', जो योग पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है: **"मनः प्रशमनोपायः योगः इत्यभिधीयते"** – योग मन को शान्त करने का एक कुशल उपाय है। यह मन में उठने वाले विचारों/भावनाओं को रोकने की एक कठोर, यांत्रिक या स्थूल प्रक्रिया नहीं, बल्कि कुशल व सूक्ष्म प्रक्रिया है। योग मन पर नियंत्रण स्थापित करने का एक कौशलपूर्ण विज्ञान है। यह पूर्णता की अंतिम स्थिति तक पहुंचने की एक प्रक्रिया अथवा एक तकनीक के रूप में विख्यात है। किन्तु योग को उच्च शक्ति और क्षमताओं की स्थितियों के रूप में भी पारिभाषित किया गया है और इसे मौन की अंतिम स्थिति के रूप में भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त योग को समस्त रचनात्मक कार्यों की शक्ति के रूप में भी वर्णित किया गया है और स्वयं में यह एक सृजन भी है। अब हम देखेंगे कि इसे विभिन्न योग व उपनिषदीय ग्रंथों में एक स्थिति और शक्ति के रूप में भी निरूपित किया गया।

एक अकुशल व्यक्ति यदि दूरदर्शन सेट की मरम्मत करने का प्रयत्न करता है तो लगभग यह माना जाएगा कि वह इसे बरबाद कर देगा, जबकि एक अनुभवी और कार्यकुशल व्यक्ति पूर्ण रूप से जानता है कि इसमें क्या खराबी है और इसकी मरम्मत किस प्रकार करनी है। वह इसकी उचित रूप से मरम्मत करता है। इसीलिए जानकारी का होना अनिवार्य है।

कार्य रूप में परिणत करने में योग एक विशेष कौशल है, जिससे मन एक स्थिर अवस्था में पहुंच जाता है: **"योगः कर्मसु कौशलम्"** (गीता 2.50)। योग कर्म में दक्षता है। दक्षता विश्राम और सजगता को कर्म में कायम रखने की होती है। इस प्रकार योग मन पर नियंत्रण स्थापित करने का एक कौशलपूर्ण विज्ञान है। योग लोकप्रिय रूप से पूर्णता की अंतिम स्थिति तक पहुंचने की एक प्रक्रिया अथवा एक तकनीक के रूप में विख्यात है किन्तु योग को उच्च शक्तियों और क्षमताओं की अवस्थाओं के रूप में भी पारिभाषित किया गया है और इसे **मौन** की अंतिम स्थिति के रूप में भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त योग को समस्त रचनात्मक कार्यों की शक्ति के रूप में भी वर्णित किया गया है और स्वयं में यह एक सृजन भी है। अब हम देखेंगे कि इसे विभिन्न योग व उपनिषदीय ग्रंथों में एक स्थिति और शक्ति के रूप में भी निरूपित किया गया।

योग – एक स्थिति

योग के द्वारा व्यक्ति चेतना के उच्च स्तरों में कूद जाता है और वह इन स्थितियों में बने रहने और इनके अनुरूप क्रिया करने में समर्थ हो जाता है। योग प्रायः हमारे मन की सूक्ष्म कारणात्मक पर्तों से संबन्ध स्थापित करता है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (गीता 2.48)

हे! धनंजय सफलता या असफलता में समान भाव रखते हुए आसक्ति को त्याग कर योग में स्थिर होकर कर्म करते रहो।

समान भाव रखना ही योग है।

इस प्रकार, मन की वह सूक्ष्म अवस्था जो स्थिरता द्वारा परिलक्षित होती है, योगावस्था कहलाती है। भावना के स्तर पर योग व्यापक रूप से स्थिरता की एक स्थिति होती है, जिसमें मानसिक स्तर पर ध्यान की एकाग्रता और अनासक्ति उत्पन्न होती है तथा शारीरिक स्तर पर स्थिरता प्राप्त होती है। इसमें शरीर और मन का समन्वय स्थापित होने के कारण व्यक्ति में पूर्णता आ जाती है।

इस प्रकार योग है:

- मन को शांत रखकर स्वयं को एकाग्र करने की प्रक्रिया,
- मन की उच्च, सूक्ष्म पर्तों की स्थितियां, और
- मनुष्य और प्रकृति की रचनात्मक शक्ति को भी योग कहा गया है।

कार्यकलाप 1

1. इस श्लोक को स्पष्ट करें: *योगः कर्मसु कौशलम्*

1.3.2 योग के संबंध में भ्रांतियां

एक व्यक्ति अपने हाथ में एक लम्बी रस्सी लिए हुए एक विशेष मंच पर प्रकट होता है। जिज्ञासु श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करते हुए वह रस्सी के एक किनारे को पकड़ते हुए दूसरे किनारे को हवा में फेंकता है। रस्सी लहराती हुई ऊपर जाती है और किसी सहारे के बिना

हवा में सीधी स्थिर हो जाती है। वह व्यक्ति उस स्थिर रस्सी को सीढ़ी के रूप में प्रयोग कर कोई प्रयास किए बिना रस्सी के शीर्ष हिस्से तक पहुंच जाता है और हवा के मध्य में स्थिर होकर दर्शकों को नमस्कार करने लगता है। क्या रस्सी वाली इस करामात को योग कहा जा सकता है?

लम्बे बालों वाले एक अर्धनग्न व्यक्ति 2×1×1 मीटर माप वाले गड़्ढे में प्रवेश करने हेतु तैयार दिखाई दिया। इस गड़्ढे को विशेष रूप से प्रदर्शन हेतु तैयार किया गया था। उसने इसमें प्रवेश किया और उसके बाद गड़्ढे को पूर्ण रूप से ढक दिया गया ताकि उसमें हवा न जा सके। कई दिनों तक वह व्यक्ति उस गड़्ढे के भीतर रहा और लम्बी अवधि के बाद बिल्कुल तरोताजा बाहर निकला। उसमें थकान के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिए। इसे भूगत समाधि कहा जाता है। आम लोगों की नजर में वह एक महान् योगी है। परंतु क्या यह वास्तव में योग है?

भूगत समाधि, सिद्धियां, जादू, मंत्र–तंत्र आदि के प्रदर्शन को भारत में भी अधिकांश लोग **योग** शब्द से सम्बद्ध करते हैं। परंतु वस्तुतः ये यभी भ्रांतियां हैं।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि योग के विषय में कई प्रकार की भ्रांतियाँ हैं। बहुत से लोग जो इससे अनजान हैं अथवा जो भारतीय संस्कृति और परम्पराओं से अनभिज्ञ हैं, वे योग निम्नलिखित से जोड़ने की भूल कर बैठते हैं।

- धर्म – अंध–विश्वास, संप्रदाय, वाद
- जादू, करामात, वशीकरण
- भौतिक संस्कृति – ऐरोबिक्स तथा ऐनेरोबिक्स
- मानसिक एकाग्रता
- आत्म–दमन, आत्म–पीड़न

किन्तु हमने पहले अनेक परिभाषाएं देखी हैं, जिनमें योग की वास्तविक प्रकृति का वर्णन इस प्रकार नहीं है।

यह एक सम्पूर्ण प्रणाली है अथवा बेहतर रूप से एक विज्ञान है या जीवन का एक मार्ग है। योग जीवन का एक मार्ग होने के कारण इसमें आयु, लिंग, व्यवसाय, स्थिति, शर्तों, समस्याओं और दुखों से अलग रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। योग का प्रयोग कोई भी/प्रत्येक मनुष्य – व्यक्तिगत, व्यावसायिक, सामाजिक, पारिवारिक अथवा आध्यात्मिक रूप में कर सकता है।

1.3.3 योग का आधार

योग का आधार प्रसन्नता की तलाश है। किन्तु हम प्रसन्नता की तलाश बाह्य रूप में ऐन्द्रियिक सुख में करते हैं। प्रसन्नता तो हमारे अपने भीतर होती है। यह मन को शान्त रखने से मिलती है। यह विचारों से विहीन स्थिति होती है। यह **आनन्द, स्वतंत्रता, ज्ञान** और **रचनात्मकता** की स्थिति होती है। उपनिषदों में भी यह उल्लेख मिलता है कि मौन साधना की मूल स्थिति, समस्त सृष्टि (सृजन) की हेतुक (कारणात्मक) स्थिति होती है। जो लोग उस व्यापक और स्थाई प्रसन्नता और आनन्द की तलाश में रहते हैं, जो लोग ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, जो एकदम स्वतंत्र रहकर अधिक से अधिक रचनात्मक बनने की इच्छा रखते हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य रहता है कि वे एकदम पूर्ण मौन की स्थिति में पहुंच जाएं। यह स्थिति होती है, जहां विचारों के लिए कोई स्थान नहीं होता और यह तब होता है जब हम स्वयं को उस आनन्दमय आंतरिक बोध से सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं।

कार्यकलाप 2

1. योग संबंधी कम से कम दो भ्रांतियों के विषय में अपने विचार स्पष्ट करें।

1.4 योग के विकास का इतिहास

योग का आशय उस प्राचीन योग प्रणाली से है, जिसे पतंजलि ने योगसूत्र में निरूपित किया है। पतंजलि ने अष्टांग योग प्रणाली के बारे में बताया है, जिसके अन्तर्गत समग्र आध्यात्मिक विकास पर जोर दिया गया, जिसमें नीतिशास्त्र (यम व नियम), आसन, प्राणायाम, इन्द्रियों पर नियंत्रण (प्रत्याहार), एकाग्रता (धारणा), ध्यान और समाधि शामिल हैं। इसमें एक सम्पूर्ण और समेकित आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रणाली सम्मिलित होती है।

यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन योग महान् वैदिक परम्परा का हिस्सा रहा है। पतंजलि ने तो बाद में इस शिक्षा का संकलन किया था। यौगिक शिक्षा के अन्तर्गत पतंजलि योग के समस्त पहलू शामिल हैं, जो पतंजलि से पहले वाले साहित्य में विद्यमान हैं, जैसे पुराण, महाभारत और उपनिषद् जिसमें पतंजलि का नाम बाद में आता है। योग का प्रणेता हिरण्यगर्भ को बताया जाता है, जो ब्रह्मांड में रचनात्मक और विकास मूलक शक्ति को निरुपित करते हैं।

योग को और अधिक पीछे जाकर ऋग्वेद में भी ढूंढा जा सकता है, जो सबसे प्राचीन हिंदु ग्रन्थ है, जिसमें हमारे मन और अन्तर्दृष्टि को सत्य अथवा वास्तविकता के प्रकाश के साथ सम्बद्ध करने की बात कही गई। प्राचीन काल में योग गुरुओं में अनेक प्रसिद्ध ऋषियों का नाम लिया जा सकता है जैसे वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य तथा जैगीशव्य। योगियों में जो योगेश्वर कहलाते हैं वह स्वयं श्रीकृष्ण है, जो भगवद् गीता के

नायक हैं। भगवद् गीता को योगशास्त्र भी कहा गया है, जिसके अंतर्गत योग पर प्रामाणिक कार्य उपलब्ध है। भगवान् शिव भी सर्वाधिक महान् योगी या आदिनाथ हैं।

भारत में योग मनुष्य के उस क्रियाकलाप का हिस्सा रहा है, जिसके द्वारा आध्यात्मिक ऊंचाइयों तक पहुंचा जा सकता है। योग का इतिहास 5 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

- वैदिक काल
- पूर्व प्राचीन काल
- प्राचीन काल
- मध्यकाल
- आधुनिक काल

1.4.1 वैदिक काल

वेद–ऋचाएं विश्व में सबसे प्राचीन ग्रंथ है। संस्कृत शब्द वेद का अर्थ है – 'ज्ञान' और ऋक् का आशय 'प्रशंसा' से है। इस प्रकार ऋग्वेद ऐसी ऋचाओं का संकलन है जिनमें सर्वशक्तिमान् की प्रशंसा की गई है। अन्य तीन वेद हैं – यजुर्वेद (यज्ञ का ज्ञान), सामवेद (गायन का ज्ञान), तथा अथर्ववेद (अथर्व का ज्ञान)। वैदिक काल में ब्रह्मांड में उच्चता को प्राप्त करने के साधन थे – ज्ञान या श्रुति, जिन्हें ध्यान के माध्यम से लिया जाता था। इसमें तीन योग शामिल हैं – मंत्र योग, प्राण योग और ध्यान योग।

- *मंत्र योग* – जिसमें मंत्रों में निहित शक्ति के कारण, मंत्र मन के रूपांतरण के उपकरण के रूप में सक्रिय हो जाता है।

- *प्राण योग* – प्राणायाम के द्वारा जैव तंत्र को बल या शक्ति प्राप्त होती है।

- *ध्यान योग* – 'धी' शब्द का आशय बुद्धि या मेधा से है, जो ध्यान शब्द का मूल है। 'धी' यानी बुद्धि मन का आंतरिक भाग है, जिसके माध्यम से हमें शाश्वत सत्य को स्वीकार करने का सामर्थ्य मिलता है। 'धी' अथवा बुद्धि का यह संवर्धन मुख्य रूप से विवेक संकाय है, जो योग और वेदान्त की प्रमुख विशेषता है।

मन को एकाग्र करके एक स्थान/विचार पर स्थिर कर लेना ही ध्यान है। 'ध्यान' वह अवस्था है जिसमें एकाग्र मन की वृत्तियां तेल की अनवरत प्रवाहमान धारा की तरह एकमात्र धारणा के इर्द–गिर्द प्रवाहित होने लगती हैं और इसके पश्चात् मानसिक योग्यताएं (मानस) में कोई भी बाहरी वस्तु मौजूद नहीं होती। ध्यान की पांच विशेषताएं हैं: एकल विचार, सहजता, धीरता, सजगता, सहज विस्तार। मन की कोई भी अवस्था, जिसमें ये पांच विशेषताएं होती हैं उसे कहा जा सकता है कि वह ध्यान की अवस्था में है।

मैत्रायणी उपनिषद् में योग को षडंग–योग कहा गया है, यानी 6 अंगों (षडंग) की समेकित प्रणाली। मैत्रायणी उपनिषद् में इसे इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है: (1) श्वसन नियंत्रण (प्राणायाम), (2) इन्द्रिय नियंत्रण (प्रत्याहार), (3) ध्यान, (4) एकाग्रता (धारणा), (5) तर्क तथा (6) अन्तर्ज्ञान या अनुभवातीत/ज्ञानातीत अवस्था (समाधि), कठोपनिषद (2.5.4) के अनुसार योग एक ऐसी अवस्था है, जिसमें हमारी समस्त इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, यानी इन्द्रियों पर और मन पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है।

1.4.2 पूर्व–प्राचीन काल

योग का सर्वाधिक असाधारण ग्रन्थ है भगवद्गीता, जिसकी रचना ईसा के लगभग 5000 वर्ष पूर्व हुई थी। भगवद्गीता के अनुसार ईश्वर से मिलने के चार मार्ग हैं। इन्हें इस प्रकार निरूपित किया गया है: जैसे श्रेष्ठ कर्म (कर्म योग), श्रेष्ठ श्रद्धा/उपासना (भक्तियोग), श्रेष्ठ/परिशुद्ध ज्ञान (ज्ञान योग) तथा संकल्प शक्ति योग (राज योग)।

भगवद्गीता में 18 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय योग कहलाता है। प्रत्येक अध्याय में अंतिम सत्य तक पहुंचने का मार्ग योग का मार्ग ही है। भगवद्गीता में मानव अस्तित्व, आत्मा की अमरता और ईश्वर के साथ हमारे शाश्वत सम्बन्ध के बारे में विशेष ज्ञान मिलता है। यह ज्ञान किसी अपवाद के बिना हम सबके लिए है।

1.4.3 प्राचीन काल

प्राचीन काल के दौरान यानी लगभग दूसरी शताब्दी में पतंजलि ने योग सूत्र लिखे थे, जिसमें 196 सूत्र हैं, जिनमें मानव जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए 8 सोपान (अष्टांग) निरूपित हैं, जो जन्म और मृत्यु के दुःखों से मुक्ति का मार्ग है। इसे राजयोग यानी संकल्प शक्ति का योग कहा गया है। इसका संक्षिप्त विवरण उपखंड 1.5 में दिया गया है।

बुद्ध का अभ्युदय भी इसी काल में हुआ था, जिन्होंने हमें अष्ट मार्ग की शिक्षा दी, तथा जिसमें ध्यान पर विशेष जोर दिया गया है।

विपाशना भारत की सबसे प्राचीन तकनीक है। लम्बे समय तक मानवता के लिए जिसका विलोप हो गया था उसे गौतम बुद्ध ने 2500 वर्षों से भी अधिक पूर्व पुनर्जीवित किया। विपाशना शब्द का अर्थ है, चीजों को उसी रूप में देखना जैसे वे वास्तव में होती हैं। यह आत्म–प्रेक्षण द्वारा स्वयं को परिशोधित करने की प्रक्रिया है। इसकी शुरूआत मन को एकाग्र करने हेतु सामान्य श्वसन क्रिया द्वारा होती है। इसमें गहन एकाग्रता के साथ व्यक्ति शरीर और मन की परिवर्तनशील प्रकृति का अवलोकन करता है और आगे बढ़ता रहता है तथा अस्थाई और दुःखपूर्ण जीवन के शाश्वत सत्य की अनुभूति करने लगता है।

जैन धर्म में प्रत्याहार और ध्यान योग के दो प्रमुख खंड हैं।

1.4.4 मध्यकाल में योग

बुद्ध ने (लगभग 6ठी शताब्दी में) पूरे उपमहाद्वीप में ध्यान को लोकप्रिय बनाया था। किन्तु इसमें एक बात पर सहमति नहीं है कि कोई व्यक्ति ध्यान के माध्यम से आध्यात्मिक क्रियाएं तत्काल नहीं कर सकता। ध्यान के लिए पहले स्वयं को तत्पर करना होता है, 6ठी शताब्दी में जब बौद्ध धर्म के प्रभाव में कमी आ गयी थी तो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ जैसे कुछ महान् योगियों ने इस पद्धति को परिशोधित किया। इस अवधि के दौरान हठ योग से सम्बन्धित कई ग्रंथों की रचना हुई।

इस अवधि में जो प्रमुख ग्रन्थ लिखे गए, उनमें स्वात्माराम द्वारा रचित **योग प्रदीपिका**, श्रीनिवास योगी द्वारा रचित **घेरंड संहिता** एक संवादात्मक ग्रंथ, श्रीनिवास योगी द्वारा रचित **हठरत्नावली**, जिसमें योग के साथ–साथ आयुर्वेद पर भी विमर्श किया है, नित्यानाथ द्वारा रचित **सिद्ध सिद्धान्त पद्धति** आदि शामिल हैं।

गुरु गोरखनाथ को नाथ सम्प्रदाय का प्रणेता माना जाता है और यह कहा जाता है कि नौ नाथ और 84 सिद्धों का मानव रूप में विश्व में योग और ध्यान का सन्देश प्रसारित करने के प्रयोजन से यौगिक अविर्भाव हुआ। वे यही योगी थे, जिन्होंने मानव को समाधि से अवगत कराया। कहा जाता है कि गुरू गोरखनाथ ने कई पुस्तकों की रचना की हैः जैसे – गोरख संहिता, गोरख गीता और योगचिन्तामणि।

1.4.5 आधुनिक काल में योग

श्री अरविन्दो द्वारा रचित "समग्र योग" (Integral Yoga) अथवा पूर्ण योग में दिव्य शक्ति के प्रति संपूर्ण समर्पण पर जोर दिया है जो दिव्य शक्ति का मार्ग है, ताकि व्यक्ति का रूपांतरण हो सके। श्री रामकृष्ण परम हंस भक्ति योग और दिव्य प्रेम के मार्ग का समर्थन करते हैं। रामकृष्ण के विचार में सभी धर्म मानव मन की विविध इच्छाओं की संतुष्टि हेतु ईश्वर के विभिन्न रूपों का प्रकटीकरण है। श्री रामकृष्ण का आधुनिक विश्व के लिए सबसे बड़ा योगदान हैः सभी धर्मों में सामंजस्य स्थापित करना।

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त की शिक्षाओं को निम्नलिखित रूप में संक्षेपण किया हैः

- प्रत्येक आत्मा संभाव्य रूप से दिव्य होती है ।
- इस आंतरिक दिव्यता को प्राप्त करने के लक्ष्य को पाने के लिए आंतरिक और बाह्य प्रकृति को नियंत्रित करना है।
- इसे कर्म योग से अथवा पूजा (भक्ति योग) अथवा मन को नियंत्रित करके (राज योग) अथवा दर्शन (ज्ञान योग) से किसी एक द्वारा अथवा एक से अधिक या इनमें से सभी के द्वारा प्राप्त करें और मुक्त हो जाएं।
- यह पूर्ण धर्म है। सिद्धांत, अथवा धर्म सिद्धान्त, अथवा अनुष्ठान, अथवा पुस्तकें, या मन्दिर या रूप, ये सभी मात्र गौण विवरण है।

1.4.6 योग के मूल स्रोत की ओर प्रेरित करने वाले मनोवैज्ञानिक पहलू

भारतीय दर्शन के प्राचीन ग्रंथों में पतंजलि योग संप्रदाय, जिसकी अवधि ईसा पूर्व 200 से 300 के अन्तर्गत है, को मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के संबंध में व्यापक स्तर पर मूल आधार के रूप में स्वीकार किया गया।

पतंजलि योग का संबंध निश्चित रूप से मन और इसकी वृत्तियों से है जिसमें मन को रूपांतरित करने की प्रक्रिया निहित है। इसमें ब्रह्मांड से समेकन की स्थिति प्राप्त करने हेतु मन का प्रशिक्षण संस्तुत किया गया है। इस उद्देश्य तक पहुंचने के मार्ग में सिद्धियां और शक्तियों की प्राप्ति भी होती है। पतंजलि योग का उद्देश्य मनुष्य को भौतिक पिंजड़े से मुक्त कराना है। मन भौतिक पदार्थ का सबसे बड़ा स्वरूप होता है और मनुष्य चित्त अथवा अहंकार (मन या अहं) से मुक्त होकर पावन हो जाता है।

मन या चित्त दो स्तरों पर संचालित होता है – बौद्धिक और भावनात्मक। मन संचालन के इन दोनों स्तरों को हटा देना होगा और इसके स्थान पर आवेग–रहित दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करना होगा। अनवरत विचार और विवेक (सुखदायक और श्रेष्ठ के मध्य विभेदन) दो साधन हैं, जिनसे बुद्धि और भावनाओं में फंसे अहं को समाप्त किया जा सकता है। वैराग्य या विरक्तता को ही विपरीत भावों के दुःखों जैसे प्रेम और घृणा, सुख और दुःख, समादर और बदनामी, प्रसन्नता और दुःख, से मुक्ति का मार्ग बताया गया है।

विरक्ति और अबाधित प्रशान्ति की इस स्थिति में पहुंचने का सबसे आसान मार्ग है भक्ति या सार्वभौमिक प्रेम का मार्ग। इसमें मनुष्य अपने सर्वस्व मन, आत्मा, अहंकार को दिव्य ईश्वर को सौंप देता है, वह केवल दिव्य इच्छा द्वारा संचालित होता है। इसे ईश्वर प्रणिधान कहा जाता है। इसके लिए व्यक्तिगत और सामाजिक अनुशासन की आवश्यकता होती है, जिन्हें ***यम*** और ***नियम*** कहा जाता है।

मित्रता का भाव (मैत्री), अनुकम्पा (करुणा, जिसमें ईर्ष्या नहीं, सदाचारी के प्रति आत्म–संतोष (मुदिता) और बुरे व्यक्तियों की उपेक्षा का संवर्धन होना चाहिए, जो प्रसन्नता के मार्ग को प्रशस्त (चित्त प्रसाद) करते हैं।

कार्यकलाप 3

1. पतंजलि के अनुसार योग का लक्ष्य क्या होता है?

2. आधुनिक काल में योग के प्रवर्तक कौन–कौन है?

1.5 अष्टांग योग या राज योग

पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग को अष्टांग कहा गया है जिसके 8 अंग हैं। इन का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

यम और नियम अथवा योग के सिद्धान्त

योग भौतिक अनुशासन से कहीं बढ़कर है। यह जीवन की एक शैली है – एक समृद्ध दार्शनिक मार्ग। *यम* (निग्रह) और *नियम* (वैयक्तिक स्तर पर अनुपालनीय) ऐसे दस सामान्य सिद्धांत हैं जो एक सामाजिक संदर्भ में एक स्वस्थ, बेहतर और खुश जीवन बिताने और आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने के लिए अत्यंत सहायक है। वे आपके चिंतन के लिए यहां दिए गए हैं ताकि आप एक तर्कपूर्ण ढंग से यह सोच सकें कि एक जटिल मन से कैसे निपटा जा सके, क्योंकि योग बाह्य रूप से थोपे गए नियमों को स्वीकार नहीं करता – यह आपके लिए सत्य की तलाश करता है और आपको इससे सम्बद्ध करता है।

यम

पतंजलि योगसूत्र के अनुसार यम केवल 5 होते हैं। इन्हें सर्वभौम महाव्रत भी कहा जाता है, क्योंकि वे किसी वर्ग, धर्म, समय अथवा परिस्थितियों तक सीमित नहीं होते। वे बाहरी दुनिया से अन्योन्यक्रिया करने संबंधी दिशानिर्देश हैं। इन्हें सामाजिक अनुशासन भी कहा जाता है, जिससे हम दूसरों से जुड़ते हैं। ये निम्नलिखित हैं:

- अहिंसा
- सत्य
- अस्तेय
- ब्रह्मचर्य तथा
- अपरिग्रह

याज्ञवल्क्य संहिता के अनुसार अहिंसा यानी हिंसा से दूर रहना अर्थात् विचार, वचन और कर्म में अहिंसा के प्रति सजग और अभ्यासरत रहना है। इसमें हमें करुणा, प्रेम, समझ, धैर्य, और सार्थकता का अभ्यास करने की प्रेरणा मिलती है।

पतंजलि सत्य को इस प्रकार वर्णित करते हैंः 'मन, कर्म और वचन में सामंजस्य रखना, सत्य के अनुसार बोलना और विचार करना, जो कुछ देखा गया, समझा गया या सुना गया है, तदनुसार बोलकर अभिव्यक्त करना और उसे बुद्धि में बनाए रखना'। पूर्ण रूप से जो सच्चा व्यक्ति होता है, वह बोलकर वही अभिव्यक्त करता है, जो वह मन में सोचता है। अन्ततः उसी के अनुसार कार्य करता है।

अष्टांग योग के यम का तीसरा घटक अस्तेय या चोरी न करना है। इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जिस वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं है उस पर बलात् अधिकार नहीं जमाना चाहिए। विचार, वचन और कर्म में हमें ईमानदार होना चाहिए। अस्तेय से ईर्ष्या और द्वेष समाप्त हो जाते हैं। इसमें व्यक्ति की पूर्णता और आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया है, जिससे वह असीम प्रगति की ओर अग्रसर हो सके।

यम के चौथे घटक यानी ब्रह्मचर्य का महत्त्व वेदों, स्मृतियों और पुराणों में वर्णित है। यह विश्वास किया जाता है कि वासनाओं का परित्याग करने से व्यक्ति दिव्य ईश्वर के निकट पहुंचता है। इस यम के अन्तर्गत मानसिक, मौखिक या शारीरिक सभी प्रकार के वासनामय सुख से दूर रहने पर जोर दिया गया है।

पांचवें यम यानी अपरिग्रह का शाब्दिक अर्थ है सांसारिक वस्तुओं का संचय न करना, उनके प्रति मोह या सम्बद्धता न हो। महर्षि व्यास ने कहा है कि यम की यह अंतिम अवस्था तभी प्राप्त हो सकती है जब हम हर प्रकार के वासनामय सुख से एकदम सम्बन्ध विच्छेद कर लें। इससे किसी प्रकार की हिंसा जैसी प्रवृति भी पूर्ण रूप से रुक जाएगी।

नियम

नियम अष्टांग योग का दूसरा अंग है। हम स्वयं से, अपने आन्तरिक दुनिया से कैसे सम्पर्क स्थापित करें। नियम हमारे आत्म नियमन के लिए होते हैं, जिनसे एक सकारात्मक वातावरण बनाए रखने में सहायता मिलती है, जिससे हमारा विकास होता है। पहले यमों के माध्यम से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, नियमों से उस ऊर्जा का उपयोग होता है। पतंजलि ने निम्नलिखित 5 नियमों का उल्लेख किया हैः

- शौच अथवा शुद्धता
- सन्तोष अथवा संतुष्टि
- तप अथवा तपस्या
- स्वाध्याय अथवा आत्म–शिक्षा तथा
- ईश्वर प्रणिधान अथवा दिव्य शक्ति के प्रति समर्पण भाव

शौच से तात्पर्य है बाह्य और आंतरिक परिशुद्धता। ऋषि मनु के शब्दों में – जल से शरीर की परिशुद्धता होती है, सत्य से मन की, वास्तविक ज्ञान से बुद्धि की और आत्मा की परिशुद्धता ज्ञान और तप से होती है। इसमें बौद्धिक वाचिक और शारीरिक परिशुद्धता पर जोर दिया गया है।

दूसरा नियम सन्तोष है, जितना हमने ईमानदारी से परिश्रम करके अर्जित किया है, उससे अधिक की इच्छा नहीं होनी चाहिए। मन की इस अवस्था में हमें जो कुछ जीवन से मिला है उसमें सामंजस्य रखते

हुए, संतोष की अनुभूति होती है। संतोष से आनन्द प्राप्त करने का अभ्यास होता है – हर अवस्था में शान्ति को कायम रखना। मन की यह अवस्था किसी बाह्य कारणों पर निर्भर नहीं होती।

योग दर्शन में तीसरे नियम यानी तप के विषय में वर्णित है कि भूख और प्यास, शीत और गर्म, स्थान और स्थिति की असुविधाओं का सामना करते हुए मौन होकर ध्यान और व्रत किया जाए। इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि पूर्ण मनुष्य वह है जो मानसिक और शारीरिक तप का निरंतर अभ्यास करता है।

महर्षि व्यास के अनुसार आत्म–शिक्षा या स्वाध्याय के अन्तर्गत धर्मग्रन्थों का अध्ययन समाहित है। धर्मग्रन्थ हैं – वेद, उपनिषद आदि। गायत्री मंत्र और ओम मंत्र को जपना भी इसके अन्तर्गत शामिल है।

अन्तिम नियम ईश्वर प्रणिधान को व्याख्याकारों ने समस्त कर्मों को चाहे वे बुद्धि द्वारा किए जाते हों, वचन अथवा शरीर द्वारा किए जाते हों, उन्हें दिव्य ईश्वर को समर्पित किए जाने के रूप में वर्णित किया है। ऐसे कर्मों के परिणाम पर अन्य किसी का अधिकार नहीं है, इसलिए यह दिव्य ईश्वर के निर्णय पर निर्भर है। नश्वर मन को सामान्य रूप से दिव्य ईश्वर की अनुभूति समर्पण, परिशुद्धि, प्रशान्ति और मन की एकाग्रता से हो सकती है। इस दिव्य ध्यान से योगी के जीवन के सभी पहलू प्रभावित हो जाते हैं।

यम और नियमों के अभ्यास का लाभ

यम और नियमों से हमारी ऊर्जा को व्यवस्थित करने में सहायता मिलती है, जिससे हमारा बाहरी जीवन आन्तरिक विकास की ओर उन्मुख हो जाता है। इनसे हमें स्वयं में करुणा और जागरूकता लाने में सहायता मिलती है। इनकी सहायता से इस जीवन के मूल्यों का समादर होने लगता है, जिससे हम बाहरी नियंत्रण के साथ आन्तरिक संतुलन को कायम रखने में सक्षम होते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो यही है कि इनसे हमें एक चैतन्य जीवन की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है।

यम और नियम सही और गलत से संबंधित नहीं है। वे तो हमें स्वयं के साथ ईमानदार बनाने के लिए होते हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार जीवन यापन करने का आशय है – हम अपने जीवन को बेहतर तरीके से जीएं, हम समझदारी से चलें ताकि दिव्य ईश्वर के समीप पहुंचना संभव हो सके।

योगासन

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र 2.46 में आसन को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है :

'स्थिरसुखमासनम्'

आसन सुखपूर्वक एक स्थिति में जम कर स्थिर हो जाना है, पतंजलि इसे इसी प्रकार पारिभाषित करते हैं। आसनों अथवा योगासनों अथवा शारीरिक मुद्राओं का उद्देश्य स्वस्थ रहना और मन पर नियंत्रण रखना है।

योगासनों का अभ्यास धीरे–धीरे किया जाता है और शरीर को किसी विशेष स्थिति में लम्बे समय तक रखा जाता है। ऐसा करने से मांसपेशियां मजबूत होती हैं। ऐसे अभ्यास की मुख्य विशेषता **गहन विश्रान्ति** होती है। इनसे ऊर्जा का संरक्षण होता है, राजसिक स्वभाव यानी उग्रता में कमी आती है और मन की चंचलता कम होती है, जिससे तनाव समाप्त हो जाता है। यही आसनों की मुख्य विशेषता होती है। आसनों से मन प्रशान्त अवस्था में आ जाता है और मानसिक चंचलता की गति घटने लगती है – **मनः प्रशमन** हो जाता है, जिससे मस्तिष्क में सामंजस्य रहता है। मस्तिष्क की कोशिकाएं सुदृढ़ होकर सक्रिय हो जाती हैं और उनमें एकरूपता आ जाती है। अनुकंपी और सह–अनुकंपी स्नायु तंत्र में अद्भुत संतुलन और सामंजस्य स्थापित हो जाता है। आसनों से हम ध्यानस्थ स्थिति में पहुंच जाते हैं। योगासन के अभ्यास से व्यक्ति अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने लगता है, जिससे चिन्ताएं, फिक्र और तनाव समाप्त हो जाते हैं। इसका प्रभाव हर स्तर पर गहन होता है। शारीरिक व्यायामों से तो केवल कैलोरी की खपत होती है, जिससे हर समय भूख लगने लगती है और कभी–कभी वजन भी बढ़ने लगता है। किन्तु योगासनों के अभ्यास से इस प्रकार बार–बार भूख नहीं लगती क्योंकि इनसे मन नियंत्रित रहता है। इनसे

हमारा कायिक व्यक्तित्व विकसित होता है और निस्वार्थ की भावना विकसित होने लगती है तथा सकारात्मक स्वास्थ्य प्राप्त कर हम परमानन्द की स्थिति में पहुंचने लगते हैं।

योगासनों की तीन स्थितियां होती हैंः **स्थिर**, **चिर** और **सुख**। पहली स्थिति आसन को अधिक स्थिर बनाने की होती है। इसमें काफी प्रयास करना होता है तथा इसे पूरी एकाग्रता और इच्छा शक्ति से किया जाता है। एक बार जब वांछित और उपयुक्त स्थिति में आ जाते हैं तो यह हिले–डुले बिना स्थिर बनी रहती है और शरीर को किसी निश्चित समय तक हिलाए बिना एक ही अवस्था में रखा जाता है। धीरे–धीरे समय बढ़ाते हुए उसे काफी देर तक उसी अवस्था में रखने का अभ्यास किया जाता है। **चिर** दूसरी स्थिति है, जिस का लक्षण विश्राम अर्थात, किसी प्रकार का प्रयास न करना है। पतंजलि ने इसके लिए सूत्र में एक उपाय बताया है– **प्रयत्न–शैथिल्य** (प.यो.सू. 2.47)। इसीलिए योग शिक्षक बार–बार बोलता रहता है कि पूरे शरीर को विश्रान्ति यानी आराम की दशा में अनुभूत करें और चेहरे पर मुस्कान के साथ दर्द का आनन्द लें। व्यक्ति स्वयं भी चाहते हैं कि 'हमें आराम अथवा विश्रान्ति मिले, मुझे आराम करने दो, मुझे तनाव में नहीं रहना है, मुझे चिन्ता में नहीं रहना है', इसलिए आसन करते समय विश्राम की स्थिति प्राप्त करने हेतु प्रयत्न का प्रत्याहार करना चाहिए कि स्वयं को एकाग्र करें और व्यर्थ की चिन्ताओं से स्वयं को मुक्त रखें। अगली स्थिति सुख की है, जो आनन्द की स्थिति होती है। व्यक्ति एक बार जब आसन को लम्बे समय तक विश्रान्ति के साथ करने लगता है, आम प्रवृत्ति है कि मन इधर–उधर घूमने लगता है, जो आसनों के पूरे उद्देश्य के विरूद्ध है। इसलिए व्यक्ति इसे कैसे रोके? पतंजलि पुनः एक दूसरा उपाय बताते हैं **'प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्'** (प.यो.सू. 2.47) यानी विशाल सुन्दर नीले आकाश या विस्तृत महासागर की कल्पना करने हेतु मन को उसी स्थान पर स्थिर रखें और केवल उसी वस्तु के साथ वहीं बने रहें। इससे मन द्वन्द्व से परे हो जाता है – **'ततो द्वन्द्वानभिघातः'** (प.यो.सू. 2.48) इससे मन में स्थिरता और संतुलन यानी समत्व आ सकता है।

इसलिए योग का प्रभाव शारीरिक स्तर से प्रारंभ होता है और मन के सूक्ष्मतर स्तर तक पहुंचने लगता है। शरीर से शुरु होता है और मांसपेशियों के स्तर की ओर बढ़ने लगता है, उसके बाद श्वसन के स्तर तक, मन अथवा भावनात्मक स्तर तक पहुंच जाता है, जिससे मन में संतुलन और शांति का संचार होता है। ऐसा करने से व्यक्ति शरीर और मन की आदर्श स्थिति को हासिल कर लेता है।

अब आसनों के अनेक वर्गीकरणों को समझने का प्रयत्न करते हैं। आसनों का वर्गीकरण कैसे करते हैं? प्रथम, सामान्य तथा खड़े होकर किए जाने वाले आसन, फिर बैठकर किए जाने वाले आसन, फिर औंधे (प्रणत) लेटकर किए जाने वाले तथा तत्पश्चात् चित लेटकर किए जाने वाले आसन। खड़े होकर किए जाने वाले आसन स्थिर आसनों के वर्गीकरण के अन्तर्गत आते हैं और जो आसन बैठी हुई अवस्था में किए जाते हैं वे बैठकी आसन की श्रेणी में होते हैं, पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन प्रणत (अधोमुख) आसन कहलाते हैं। पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन पृष्ठ आसन की श्रेणी में आते हैं। उदाहरण के लिए – स्थिर आसनों में अर्धकटि चक्रासन, पाद हस्तासन, अर्ध चक्रासन, परिवृत्त त्रिकोणासन आदि शामिल हैं। स्थिर अवस्था वाले आसनों में व्यक्ति एक ओर मुड़ता है। पीछे और आगे की ओर मुड़ने वाले आसन आदि शामिल हैं। बैठकर किए जाने वाले आसनों में वज्रासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन आदि आते हैं। पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन हैं – शलभासन, भुजंगासन, धनुरासन आदि।

आसनों का वर्गीकरण

आसनों को सांस्कृतिक, विश्रान्त और ध्यानस्थ रूप में भी वर्गीकृत किया गया है। शवासन, मकरासन (मगरमच्छ जैसा आसन), शीतल ताड़ासन और शीतल धनुरासन विश्रान्ति वाले आसन हैं। पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन और सुखासन आदि को ध्यानस्थ आसन कहा जाता है। अन्य सभी आसन सांस्कृतिक आसन कहलाते हैं। ये आसन विशेष रूप से हमारे व्यक्तित्व के संवर्धन के लिए होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे लोग हैं जो बहुत शर्मीले होते हैं और उनके कन्धे आगे की ओर झुके होते हैं, चेहरे पर संकोच होता है। ऐसे लोगों में आत्मविश्वास लाने, शर्मीलेपन को दूर करने तथा उन्हें निर्भीक व सक्रिय बनाने के लिए उन्हें सांस्कृतिक आसन करने की सलाह दी जाती है, जैसे पीछे की ओर झुकने वाले आसन या चक्रासन, भुजंगासन (कोबरे की आकृति वाला आसन), अर्ध चक्रासन (खड़े होकर पीछे की ओर झुककर)

और सुप्त वज्रासन। दूसरी ओर ऐसे भी लोग होते हैं जो जन्म से ही (ए–प्रकार के हैं) – बहुत ही अहंकारी और घमंडी हैं। उनके कन्धे हमेशा पीछे की ओर झुके होते हैं और सिर ऊपर रहेगा। ऐसे लोगों में नम्रता लाने के लिए आगे की ओर झुकने वाले आसन जैसे पश्चिमोत्तासन, शशांकासन, पादहस्तासन निर्धारित हैं, जिससे उनके अहंकारी स्वभाव में सुधार आ सके और प्रसन्नचित और हंसता–मुस्कुराता व्यक्तित्व बन सके। इसलिए प्रत्येक सांस्कृतिक आसन व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से निर्धारित हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण यौगिक आसनों का मौलिक वर्गीकरण हैः

कार्यकलाप 4

1. अष्टांग योग के आठ अंग कौन–कौन से हैं?

2. पाँच नियमों और पाँच यमों के नाम क्रम से लिखिए

3. आसनों का वर्गीकरण किस प्रकार है?

प्राणायाम

पतंजलि के अनुसार

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः (प.यो.सू. 2.49)

अर्थात् अन्तःश्वसन और बहिःश्वसन (श्वास व उच्छ्वास) की गति को तोड़ना प्राणायाम कहलाता है। प्राण श्वसन से संबंधित है और जब कोई श्वसन क्रिया पर नियंत्रण करने लगता है, तो यह समझिए कि उसने प्राणायाम करना शुरु कर दिया है। श्वसन प्रणाली स्वैच्छिक तथा स्वतः दोनों रूपों में कार्य कर सकती है। किन्तु जब कोई सजग नहीं रहता तो श्वसन क्रिया स्वतः ही एक विशेष गति से होती रहती है। इसकी सामान्य गति 15 श्वासें (अन्तः श्वसन के साथ–साथ बहिःश्वसन) प्रति मिनट की होती है। प्राणायाम करते हुए व्यक्ति श्वसन गति को स्वेच्छा से कम कर देता है और दोनों नासिका छिद्रों के मध्य इसे संतुलित भी कर देता है।

प्राणायाम में पहला सोपान परिमार्जन (स्वच्छता) का होता है। यह देखना बहुत आवश्यक है कि इसमें हमारी श्वसन प्रणाली हमारे नियंत्रण में आ जाती है। इसमें तीव्रगति से श्वसन तकनीक शामिल है, जिसे कपालभाति कहा जाता है। यह क्रिया श्वसन मार्ग को स्वच्छ बना देती है। कपाल का अर्थ है खोपड़ी और भाति का अर्थ चमक से है। **तीव्र श्वसन क्रिया से मस्तिष्क की कोशिकाएं संवेदनशील हो जाती हैं और कपाल (खोपड़ी) में चमक आ जाती है।** ऐसा दोनों नासिका छिद्रों से **सक्रिय उच्छ्वास** से और उसके बाद स्वतः अन्तः श्वसन से होता है। यह सम्पूर्ण क्रिया पेट में होती है, इसमें आमाशय को अन्दर की ओर खींचना होता है, जिसमें फुफकार के साथ श्वास तेजी से बाहर आती है। पूरी श्वास फुफकार से बाहर आनी चाहिए। जब यह दोनों नासिका छिद्रों से की जाती है तो इसे द्विनासिका कपालभाति कहते हैं। मगर जब बारी–बारी से दोनों नासिकाओं से की जाती है तो पहले फुफकार बायीं नासिका छिद्र से और उसके बाद दायीं नासिका छिद्र से इसे **एकान्तर नासिका कपालभाति** कहा जाता है। सामान्य रूप से इसकी गति 120 सोपान प्रति मिनट यानी 120 बार अन्तः श्वसन तथा 120 बार उच्छ्वास प्रतिमिनट होती है। इस क्रिया से रक्त में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा कम हो जाती है और रक्त में ऑक्सिजन की मात्रा में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप सारी प्रणाली स्वच्छ हो जाती है। कपालभाति से श्वसन प्रणाली की सफाई हो जाती है। चाहे द्विनासिका कपालभाति हो या एकान्तर कपालभाति दोनों का प्रभाव एक ही तरह से होता है। पूरी प्रणाली में ऑक्सिजन का संचार होता है और मस्तिष्क की कोशिकाएं भी

संवेदनशील हो जाती हैं, क्योंकि मस्तिष्क में पूर्ण रूप से ऑक्सिजनयुक्त रक्त की आपूर्ति हो जाती है इससे स्मरणशक्ति और एकाग्रता शक्ति बढ़ती है और मन पर व्यापक रूप से नियंत्रण हो जाता है।

दूसरा सोपान श्वसन को सामान्य करना होता है, जिसे अनुभागीय/आंशिक श्वसन से पूरा किया जाता है। **श्वास लेने और श्वास छोड़ने की प्रक्रिया से श्वसन का एक चक्र पूरा होता है।** सामान्य श्वसन क्रिया की दर 15 से 18 प्रति मिनट होती है। किन्तु कुछ लोगों की गलत आदत होने के कारण उनकी श्वसन क्रिया बहुत तीव्र होती है और अधिकांश लोग श्वास संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होते हैं। यह देखा गया है कि श्वसन क्रिया **की दर बहुत तेज होती है।**

सरलतम प्राणायाम किसी भी सुविधाजनक स्थिति में विश्राम की अवस्था में बैठ कर धीरे–धीरे श्वसन करना होता है। यह सुलभ प्राणायाम होता है। प्रगति की दृष्टि से श्वास लेते समय शीतल वायु की अनुभूति कीजिए और बाहर छोड़ते समय गर्म वायु की अनुभूति होती है। जब भीतर श्वास लेते हैं तो ऐसा लगना चाहिए की पूरे शरीर में ऊर्जा का संचार हो रहा है और जब श्वास धीरे–धीरे बाहर दोड़ते हैं तो पूरे शरीर में विश्रान्ति की अनुभूति होती है, जिससे आगे लाभ होता है। इस प्राणायाम को किसी भी दिन किसी भी समय खड़े होकर, बैठकर अथवा लेटकर किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के प्राणायामों को निम्नलिखित चार मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1. संतुलित रखने वाला प्राणायाम
2. संवेदनशील बनाने वाला प्राणायाम
3. शीतलता और जागरूकता विकसित करने वाला प्राणायाम
4. गुंजायमान और लययुक्त प्राणायाम

नाडीशुद्धि प्राणायाम में अन्तः श्वसन बायीं नासिका छिद्र से और बहिःश्वसन दायीं नासिका छिद्र से धीरे–धीरे किया जाता है। अगला अन्तःश्वसन दायीं नासिका छिद्र से और बहिःश्वसन बायीं नासिका छिद्र से किया जाता है, इससे एक चक्र पूरा होता है। इस अभ्यास से श्वासों में संतुलन और श्वसन मार्गों में स्वच्छता कायम हो जाती है। उपनिषदों में कहा गया है कि हमारे शरीर में 7.2 मिलियन नाडियां होती हैं, जिनमें ऑक्सिजन का प्रवाह होता है। इनमें एक व्यान, जो पांच प्रकार के प्राणों में से एक है सभी 7.2 मिलियन नाडियों में संचारित होता है। इस प्रवाह में किसी प्रकार का असंतुलन इड़ा (बायीं नासिका) और पिंगला (दायीं नासिका) के बीच में होता है। नाडी शुद्धि प्राणायाम इन दोनों में संतुलन लाता है। इसीलिए इसे **संतुलन करने वाला प्राणायाम** भी कहते हैं।

अगला प्राणायाम ***उज्जायी प्राणायाम*** है। यह संवेदनशीलता लाने का अभ्यास है। इसमें थोड़ा कंठच्छद होता है। इसमें वायु श्वास नली में अवरूद्ध होती है और वायु नली में एक 'हिश' सी आवाज होती है, जो अवरुद्धता की अलग–अलग सी ध्वनि (सामान्य आवाज के विपरीत) होती है। इससे गले के आसपास संवेदनशीलता आ जाती है।

अगले वर्ग में, ***शीतलता देने वाले प्राणायाम*** की तीन पंरपरागत विधियां हैंः ***शीतली, सीत्कारी*** और ***सदंत***। शीतली प्राणायाम में जीभ मोड़ी जाती है और मुंह से बाहर निकालकर कौवे की चोंच के जैसे दिखाई देता है। इस चोंच वाली जीभ से श्वास लेने पर नासिकाओं से श्वास छोड़ा जाता है। कोई भी व्यक्ति आसानी से तब शीतलता की अनुभूति करता है जब श्वास अंदर जाती है और जब बाहर निकलती है तो थोड़ी गर्मी का अनुभव होता है। सीत्कारी प्राणायाम में जीभ को पीछे की तरफ मोड़ लिया जाता है ताकि जीभ का अगला हिस्सा ऊपर वाले तालु को स्पर्श करे और श्वास जीभ के दोनों सिरों से लिया जाता है एवं श्वास नासिकाओं से छोड़ा जाता है। सदंत प्राणायाम में जीभ को दांतों के अगले भाग में लाया जाता है जिससे जीभ दांतों के पिछले हिस्से को स्पर्श कर सके। श्वास दांतों की दरारों के माध्यम से लिया जाता है और नासिकाओं से छोड़ा जाता है।

गुंजन वाले प्राणायाम की अगली श्रेणी ***भ्रामरी प्राणायाम*** से शुरु होती है। यहां पर नासिकाओं से श्वसन सामान्य होता है किन्तु जब सांस छोड़ी जाती है तो मादा मक्खी की सी आवाज (हम्मम) निकलती है। पूरे शरीर में आवाज गूंजती है और मन के विकारों का शमन होता है और मन शांत हो जाता है। यह

प्राणायाम सभी लोगों द्वारा किया जाना चाहिए और किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यहां तक कि कैंसर के मरीज भी इसको लेटकर कर सकते हैं।

प्रत्याहार

इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने से जब इन्द्रियों का उनके विषयों से सम्बन्ध टूट जाता है तब इन्द्रियाँ चित्त स्वरूप हो जाते है जैसा कि योगसूत्र में कहा गया है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त्स्वरूपानुकर इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। पा. यो. सू. 2.54

तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों का निग्रह ही प्रत्याहार है। जब इन्द्रियाँ विषयों की तरफ नहीं भागती हैं तो चित्त स्थिर हो जाता है। यही प्रत्याहार की स्थिति है।

धारणा

प्रारंभिक रूप से मन में कई प्रकार के विचार और विषय तैरते रहते हैं। एकाग्रता के माध्यम से इन विचारों और विषयों को कम किया जाता है और उसके बाद मन को एक विषय के ऊपर या एक विचार के ऊपर केन्द्रित किया जाता है। धारणा की यही अवस्था है। पतंजलि कहते हैं कि **देशबन्धश्चितस्य धारणा** (पा.यो.सू. 3.1) जिसमें मन को एक बिन्दु विशेष पर एकाग्र किया जाता है। वस्तुतः यह त्राटक की एक क्रियाविधि होती है। जलती हुई मोमबत्ती हम अगर आंखों के पास ले जाते हैं और मोमबत्ती की लौ को ही एक तरफ से देखते रहते हैं तो यह एकाग्रता का उदाहरण है। यही धारणा होती है।

ध्यान

धारणा का दूसरा सोपान ध्यान या मेडीटेसन होता है। यदि धारणा केन्द्रित होती है तो ध्यान विकेन्द्रित होता है। पतंजलि हमें ध्यान के बारे में बताते हैं कि यह प्रयासहीन धारणा है। जैसाकि धारणा के अंतर्गत यदि विपरीत रूप से ध्यान को केन्द्रित किया जाता है तो प्रयासहीन ध्यान के अंतर्गत पूरा विकेन्द्रीकरण होता है। यह पतंजलि के अष्टांग योग का सातवां अंग है।

समाधि

ध्यान से पूर्व मन में अनेक यादृच्छिक विचार विद्यमान होते हैं। ध्यान की अवस्था में ये सब विचार समाप्त हो जाते हैं। तब केवल वही वस्तु दिखाई देती है जिस पर ध्यान केन्द्रित होता है। ध्यान की परिपक्व अवस्था आने पर उस वस्तु का ज्ञान भी नहीं रहता है। उस अवस्था में द्रष्टा और दृश्य का भेद मिट जाता है। द्रष्टा चैतन्य रूप हो जाता है। यही समाधि है। **सम्यक् आधीयते इति समाधिः** अर्थात् गहन तल्लीनता अथवा महा–चेतनता ही समाधि है।

कार्यकलाप 5

1. विभिन्न प्रकार के प्राणायाम कौन–कौन से हैं?

1.5.1 योग के उद्देश्य एवं लक्ष्य

- जीवन से अज्ञान (अविद्या अथवा वास्तविकता के बोध का अभाव) को दूर करना, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (अर्थात् जीवित रहने की उत्कट इच्छा), जीवन के इन पांच क्लेशों का विलोपन।
- उच्च्तम चेतनता की ऐसी स्थिति में प्रवेश करना जिसमें जीवन के सत्य, (बोध) पूर्ण चैतन्य, (ज्ञान) परम ज्ञान, आनन्द और प्रेम के रूप में प्रकटीकरण हो।
- वास्तविक आत्मा के प्रति बोध।

1.5.2 यौगिक क्रियाएंः क्या करें और क्या न करें

हठ यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से कुछ विशेष शक्तियां प्राप्त होती हैं जिन्हें सिद्धियाँ भी कहा जाता है (जैसे अतीन्दिय दृष्टि और अतीन्द्रिय श्रवण)। इनके बारे में स्वात्माराम हमें सावधान करते हैं, यदि व्यक्ति भलीभांति और उचित अभिरुचि से अभ्यास नहीं करता है तो इस बात का खतरा होता है कि वह इन शक्तियों का दुरुपयोग करेगा। (पतंजलि सिद्धियों को व्यर्थ मानते हैं और आत्म अनुभूति के वास्तविक लक्ष्य में इन्हें एक बाधा के रूप में देखते हैं)।

स्वात्माराम कहते हैं कि इनका अभ्यास बिना फल की इच्छा से किया जाए, लेकिन बहुत ही ध्यान से, जिसमें एक संतुष्ट जीवन यापन हो और अल्पाहार हो। व्यक्ति को बुरी संगति से बचना चाहिए। आग से, यौन संबंधों से, लंबी यात्राओं से, सुबह–सुबह ठंडे जल के स्नान से, उपवास तथा भारी शारीरिक कार्य से बचना चाहिए। केवल वस्त्र (गेरुए) धारण करने से या योग संबंधी बाते करने मात्र से योगी नहीं बनता, अपितु निरंतर योगाभ्यास से ही यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है। हठ योग के अभ्यास के माध्यम से शरीर और मन को परिशोधित और स्वच्छ किया जा सकता है। इनके सही अभ्यास से साधक बंधन मुक्त हो सकता है।

परिणामों के बहकावे में आकर व्यक्ति यौगिक क्रियाओं का अत्यधिक अभ्यास कर सकता है गहन संवेदनाओं से कभी–कभी मनुष्य की स्वार्थ भावना में वृद्धि हो जाती हैं यदि सावधानी न बरती जाए तो हम घोर विपत्ति में फंस सकते हैं। ऐसी अवस्था में योग खतरनाक सिद्ध होगा।

'न हठात् न बलात्' न तो अत्यधिक कठोरता से और न बलपूर्वक, यही सूत्र त्वरित प्रगति के लिए अनुकूल है। यह एक विवेकपूर्ण प्रबंधन है, बुद्धि सम्मत प्रक्रिया है जिससे विकास हो सकता है। योग में यह दिशानिर्देश है।

1.6 योग की धाराएं

मनुष्य के व्यक्तित्व को मुख्य रूप से चार मूलभूत वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: भावनात्मक, सक्रिय, सहज ज्ञान और स्वैच्छिक। पतंजलि ने इस तथ्य को भलीभांति समझ लिया था, यह भी जान लिया था कि प्रत्येक व्यक्ति का अलग स्वभाव होता है और इन वर्गों में से जो सबसे शक्तिशाली होता है उसके अनुसार ही व्यवहार किया जाता है। वे जानते थे कि योग का मार्ग इस प्रकार से निर्धारित किया जाए जो किसी व्यक्ति के विशेष गुणों के अनुकूल हो। इसलिए वह सुझाव देते हैं कि:

- भक्तियोग उन लोगों के लिए अनुकूल है जो भावनात्मक और भक्तिभाव में लीन होते हैं। (संदर्भ : 1:23; 2:1; 2:23; 2:45; आदि)
- ज्ञान योग उन लोगों के लिए है जो प्रकृति से सहज होते हैं। वह ओम (1:27–29) के वास्तविक अर्थ के विषय में चिंतन और अन्वेषण की संस्तुति करते हैं और सांख्य दर्शन के बारे में भी विस्तार से बताते हैं। (2:20, 21 आदि) जिसे वे बेहतर अनुभूति का साधन मानते हैं। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि सभी मानसिक ज्ञान सीमित होता है।
- राज योग या पतंजलि योग उन लोगों के लिए है जिनकी दृढ़ इच्छाशक्ति होती है, यह समस्त ग्रंथों का मूल विषय है।
- कर्मयोग उन लोगों के लिए है जो प्रकृति से सक्रिय होते हैं, यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु यह बहुत से सूत्रों में निहित है। उदाहरण के लिए यम और नियमों में कर्मयोग को नित्य प्रति के कार्यों और कर्तव्यों के रूप में महत्त्व दिया गया है। कर्म योग भक्ति योग वाले श्लोकों में भी वर्णित हुआ है। पतंजलि जानते थे कि भक्तियोग में सफलता मिलने पर स्वतः ही राजयोग में सफलता मिल जाती है, ज्ञान योग से राज योग की पूर्णता प्राप्त होती है। वे जानते थे कि योग के पथ पर चलने वाला व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण अस्तित्व में समेकित कर लेता है। व्यर्थ की मानसिकता और अहम् को छोड़ देना चाहिए और इसके लिए जो भी उपलब्ध पद्धति है उसका उपयोग करना चाहिए। मन के नकारात्मक और बाधक कार्य छोड़ देने चाहिए।

वृत्तियों का निग्रह वैराग्य और अभ्यास (योग अभ्यास) से प्राप्त किया जा सकता है। (1:12)

इस कथन में योग के सभी मार्ग और तकनीकें शामिल हैं। इसमें कुछ भी नहीं छूटा। वे सब योग में सफलता की ओर अग्रसर करते हैं।

1.6.1 कर्म योग

भगवद् गीता में कर्म योग के चार मुख्य नियम वर्णित हैं ताकि आप सभी तनावों से एकदम मुक्त होकर अपने कर्म (कार्य) का हर क्षण आनन्द ले सकें।

क) कर्म कर्तव्य समझकर करें,

ख) कार्य को बिना आसक्ति से करें,

ग) परिणाम की चिंताओं को कभी आने मत दो जो आपके कार्य के दौरान आपके मन को विचलित करती हैं।

घ) असफलता और सफलता को समबुद्धि से स्वीकार करें।

कर्म योग की इन तकनीकों के उपयोग से हम अपने कार्य में पूर्ण सजगता के साथ विश्रांति में कार्य करने की कला सीखते हैं। अपने भीतर के आनन्द को खोने मत दीजिए, कर्म का पथ हमें यह सिखाता है कि

समाज के साथ किस प्रकार निष्पक्षता और प्रभावी रूप से अन्योन्य क्रिया की जाए। इस उद्देश्य को कायम रखते हुए और मन को स्थिर रखते हुए, एक न्यायाधीश की भांति दोनों पक्षों के सशक्त तर्कों को सुनते समय मन की स्थिरता ही काम करती है और यही कर्म योग की करामात है। यदि हम अपने तनाव और दबाव से नियमित रूप से छुटकारा पाते रहें तो पूरे कर्म संबंधी चरण में हमारी अंतर्दृष्टि का विस्तार होता है। कर्म योग की तकनीकों के उपयोग से तनाव और दबावों का जो संचय मन पर होता है उनको कम करने में सहायता मिलती है और हम तनावमुक्त जीवन जीने की संभावना को साकार कर सकते हैं।

1.6.2 भक्ति योग

भक्ति से तात्पर्य है कि ईश्वर के प्रति समर्पण और प्रेमपूर्ण आसक्ति। यह शब्द भज् (सम्मिलित होने) धातु से निर्मित है और सहभागिता की ओर संकेत करता है। भक्ति मार्ग पर चलने वाला योगी दिव्य ईश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, भक्ति भाव से सेवा करता है और उनकी पूजा अर्चना में तल्लीन रहकर अन्ततः उस दिव्य ईश्वर में आध्यात्मिक रूप से मिल जाता है।

भारत की दार्शनिक और धार्मिक परंपराओं में भक्ति की अवधारणा काफी व्यापक रूप से जुड़ी है। नारद भक्ति सूत्र भक्ति की प्रकृति से संबंधित एक मुख्य ग्रंथ है जिसमें भक्ति और प्रेम के संबंध पर जोर दिया गया है और मौलिक शैली में प्रकृति के रहस्य को बताया गया है।

भक्ति से हृदय निर्मल हो जाता है तथा ईर्ष्या, घृणा, वासना, क्रोध, अहंकार, घमंड और उग्रता जैसे विकार समाप्त हो जाते हैं। इससे आनन्द, दिव्यता, प्रसन्नता, शान्ति और ज्ञान की प्राप्ति होती है। सभी तरह की चिन्ताएं, फिक्र, भय, मानसिक विकृतियां और कुंठाएं पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती हैं। भक्त जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। उसे असीम शांति, आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

भक्ति का मार्ग पूरे विश्व में व्याप्त है और यह सभी जीवों के लिए होता है। यह हर काल में एक ही जैसा रहता है और इसका संबंध प्रत्यक्ष रूप से आत्मा से होता है और साथ ही महान् आत्मा से भी जुड़ जाता है, यह किसी जाति, धर्म, वर्ग और राष्ट्रीयता से ऊपर है। भक्ति आपके हृदय का पावन प्रेम होता है जिसमें भक्त दिव्य ईश्वर से मिलने के लिए उत्सुक होता है और इस जीवन में आपकी आत्मा दिव्य बन जाती है।

1.6.3 राज योग

मन के स्तर पर हम दृढ़ इच्छा शक्ति पर जोर देते हैं और इसमें स्वतंत्रता का पुट भी होता है। 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है'। आज के समय में यदि हम कई प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त हैं जैसे बीमारी, तनाव और दबाव आदि ये हमारे द्वारा निर्मित हैं अर्थात् हमारी कमी से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए हमें स्वयं को बदलना होगा और यदि हम आनन्दमय स्थिति, रचनात्मकता और स्वतंत्रता में जीना चाहते हैं तो इन दुःखों पर विजय प्राप्त करनी होगी।

जब हम इस स्वतंत्रता को पहचान लेते हैं (जो हमारे अन्दर मौजूद है) और हम चेतना के उच्च स्तरों तक स्वयं को विकसित करने का संकल्प लेते हैं तो यह यात्रा शुरु हो जाती है। जैसे कि हम आगे की ओर बढ़ते हैं तो कई तरह की कठिनाइयां और बाधाएं हमारे मार्ग में उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है जो हमारे दृढ़ संकल्प को व्यवस्थित करे और राज योग से हम इन समस्याओं का समाधान अपनी इच्छाशक्ति या दृढ़ संकल्प से कर सकते हैं। इससे संबंधित सोपानों पर अष्टांग योग में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

1.6.4 ज्ञान योग

ज्ञान योग बुद्धि और विश्लेषण का मार्ग है। यह विवेक से संबंधित है और इसकी अपनी एक क्रियाविधि होती है। इस क्रियाविधि का केन्द्र श्रवण स्मरण और विश्लेषण (मनन) और ध्यान करने की विधि

(निदिध्यासन) के इर्दगिर्द घूमता है। आज वैज्ञानिक युग में मनुष्य काफी तर्कशील हो गया है। आज बौद्धिक शक्ति का बोलबाला है। विश्लेषण इस विधि का उपकरण है। दर्शन (ज्ञान योग) का मार्ग प्रखर बुद्धिजीवियों के लिए उपयुक्त है और 'प्रसन्नता', के विश्लेषण के इर्दगिर्द केन्द्रित है, प्रमुख रूप से यह योगदान उपनिषदों का है।

चिन्तन–मनन उन शक्तियों पर निर्भर करता है जिन्हें तार्किक रूप से स्वीकार किया गया है, यह साधना अथवा गहन ध्यान है। यह ज्ञान योग का गहन चिन्तन–मनन भी है। जब हम ध्यान की गहराई में जाते हैं तो उच्च से उच्चतर आयामों तक पहुंच जाते हैं। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मुझमें वह आनन्दमय बोध आ गया है अथवा असीम चेतनता आ गई है। यह ज्ञान या आत्मानुभूति है।

कार्यकलाप 6

1. कर्म योग के चार प्रमुख नियम कौन–कौन से हैं?

1.7 योग के दो संप्रदायः राज योग और हठ योग

पतंजलि योग अष्टांग योग भी कहलाता है – अर्थात आठ अंगों से युक्त योग। इसका संबंध मानसिक अनुशासन तथा इसकी शक्तियों से है। जबकि हठ योग शारीरिक नियंत्रण और श्वसन के विनियमन पर जोर देता है।

हठ योग का परमोत्कर्ष राज योग होता है। हठ योग में निरंतर साधना (आत्म प्रयास, आध्यात्मिक अभ्यास) से राज योग में पहुंचना संभव होता है। हठ योग एक ऐसी सीढ़ी है जिससे होकर राज योग तक पहुंचा जा सकता है।

शरीर का शुद्धीकरण और श्वासों का नियंत्रण हठ योग का प्रत्यक्ष उद्देश्य है। शरीर के शुद्धीकरण के लिए षट्कर्म संस्तुत किए गए है जो इस प्रकार हैः धौति (आमाशय की सफाई), बस्ति (एनिमा का प्राकृतिक स्वरूप), नेति (नासिकाओं की स्वच्छता), त्राटक, नौलि (नाभि की सुदृढ़ता) और कपालभाति (एक विशेष प्राणायाम से अवरोधों को दूर करना), [प्राणायाम = श्वसन क्रिया का नियमन और नियंत्रण]। आसनों,

प्राणायाम, बन्धों और मुद्राओं से शरीर स्वस्थ, हल्का, मजबूत और सीधा हो जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य और सांसारिक शक्ति की प्राप्ति हो जाती है किन्तु छात्रों को यह राजयोग से संबंधित अभ्यासों के लिए तैयार करने की एक पद्धति है।

1.8 स्वस्थ जीवनचर्या के लिए यौगिक क्रियाएं

योग की वास्तविक प्रकृति का सार निम्नलिखित प्रकार से दिया जा सकता है:

- योग सम्पूर्णता की अनुभूति करने का विज्ञान और कला है अर्थात् इस का उद्देश्य अंतिम वास्तिवकता अथवा उच्च्तम चेतनता को प्राप्त करना है।
- सकल जीवन पद्धति अर्थात् शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कल्याण से युक्त संपूर्ण जीवन।
- स्वास्थ्य, सामंजस्य और प्रसन्नता का विज्ञान जहां स्वास्थ्य, सामंजस्य और प्रसन्नता का अर्थ है:

  स्वास्थ्य *(सकल स्वास्थ्य)* – शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कल्याण।

  सामंजस्य – आंतरिक सामंजस्य (शरीर, मन और भावना) तथा बाह्य सामंजस्य (सामाजिक, व्यावसायिक)

  आनन्द – प्रसन्नता की स्थायी अवस्था अथवा परमानन्द की स्थिति अथवा आनन्दमय कोष – यह आत्म अनुभूति की स्थिति है।

उपर्युक्त के आधार पर हमने समझा है कि दिव्यता की ऊचाईयों तक व्यक्ति के विकास को संभव बनाने के लिए योग की सामान्य क्रियाविधि के अंतर्गत ऐसी उपचारात्मक तकनीक आनी चाहिए जिनके उपयोग से व्यक्ति अधिक स्वस्थ बना रहे।

योग ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व विकास में निम्नलिखित के आधार पर मुख्य भूमिका निभाती है :

i) आसनों के द्वारा मांसपेशियों में गहन विश्रान्ति आ जाती है।

ii) श्वसन क्रिया की दर कम तथा श्वास लेने की प्रक्रिया संतुलित हो जाती है जो प्राणायाम और श्वसन संबंधी अभ्यासों से संभव है।

iii) ध्यान के द्वारा मानसिक धरातल पर सृजनात्मक और इच्छाशक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

iv) ज्ञान योग के अभ्यास से बुद्धि को तीव्र बनाना तथा मन की शान्ति स्थापित करना संभव होता है।

v) जीवन में प्रसन्नता का समावेश तथा भावनात्मक स्तर पर समरसता लाई जा सकती है। यह भजनों, धुनों, और भक्तिपूर्ण कीर्तनों के माध्यम से सम्भव है।

vi) मनुष्य के जीवन के हर पहलू में अन्तर्जात दिव्यता का प्रकटीकरण कर्म–योग के नियमों के अनुसरण द्वारा संभव है।

स्वस्थ जीवन के लिए समेकित योग मॉड्यूल (60 मिनट)

अभ्यास सं.	अभ्यास	दौर	अवधि
1	**श्वसन अभ्यास**		
	हस्त प्रसारण श्वसन	3×3	2 मिनट

	टखना प्रसारण श्वसन	5	1 मिनट
	खरगोश श्वसन	5	1 मिनट
	शशांकासन श्वसन	5	1 मिनट
	तात्कालिक विश्रान्ति तकनीक (आईआरटी)	–	1 मिनट
2	**शिथिलन अभ्यास**		
	धीमी गति से दौड़ना	–	2 मिनट
	आगे व पीछे झुकना	10	20 सेकेण्ड
	पार्श्व झुकाव	10	20 सेकेण्ड
	मरोड़ना	10	20 सेकेण्ड
	पवन मुक्तासन क्रिया	3×2+10+10	2 मिनट
	त्वरित विश्रान्ति तकनीक (क्यूआरटी)		2 मिनट
3	**सूर्यनमस्कार**	3	2 मिनट
4	**योगासन**		
	खड़े होकर करने वाले आसन (खड़े होकर)		
	अर्धकटि चक्रासन	दोनों ओर	1+1 मिनट
	त्रिकोणासन	दोनों ओर	1+1 मिनट
	परिवृत्त त्रिकोणासन	दोनों ओर	30 सेकेण्ड प्रत्येक
	बैठकर किए जाने वाले आसन		
	पश्चिमोत्तानासन	–	1 मिनट
	उष्ट्रासन	–	1 मिनट
	वक्रासन अथवा अर्ध मत्स्येंद्रासन	दोनों ओर	1+1 मिनट
	पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन (अधोमुख या प्रणतासन)		
	भुजंगासन		1 मिनट
	शलभासन		1 मिनट
	पीठ के बल लेटकर (चित्त या उत्तान)		

	हलासन	–	30 सेकेण्ड
	चक्रासन	–	30 सेकेण्ड
	गहन विश्रान्ति वाली तकनीक (डीआरटी)	–	7 मिनट
5	**प्राणायाम के लिए तैयारी अभ्यास**		
	स्वच्छता लाने वाला श्वसन (कपालभाति क्रिया)	40–100	1 मिनट
	विभागीय प्राणायाम	3×4	2 मिनट
6	**प्राणायाम**		
	सूर्य अनुलोम विलोम प्राणायाम	5	1.5 मिनट
	नाडी शुद्धि प्राणायाम	5	3 मिनट
	शीतली तथा सदंत प्राणायाम	5	1.5 मिनट
	भ्रामरी प्राणायाम	–	1.5 मिनट
	नादानुसंधान प्राणायाम	3×4	3.5 मिनट
	भक्ति गीत	–	5 मिनट
	ध्यान	–	5 मिनट
	कुल		**60 मिनट**

1.9 कुछ चुनिंदा यौगिक क्रियाएं

संस्तुत योग अभ्यासों के क्रम में से, जो निम्नलिखित हैं, 10 या 12 आसनों को चुना जा सकता है और कुछ अन्य अभ्यासों को भी नियमित रूप से करने के लिए चुना जा सकता है। बारी–बारी से इनमें अन्य एक या दो अभ्यास जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार अभ्यास का कुल समय संतुलित रहता है। सामान्य रूप से कुल समय 30 से 45 मिनट तक प्रतिदिन हो सकता है।

1.9.1 आसन

- ***सर्वांगासन***

  स्रोतः स्रोत की जानकारी नहीं है किन्तु पारंपरिक रूप से यह काफी पुराना आसन है। यह विपरीतकरणी का संशोधित रूप है।

संक्षिप्त तकनीक

ठीक से सीधे लेट जाइए। दोनों पैरों को धीरे–धीरे एक साथ मिलाइए और ऊपर की ओर उठाकर 90 अंश तक ले जाइए, इसको कुछ देर के लिए कायम रखें। हाथों को जमीन पर टिकाकर टांगों को सिर की तरफ ले जाइए और साथ–साथ नितम्ब को भी उठाइए। इसको संतुलित रखिए और नितम्ब को थामने के लिए हाथों को नितम्ब पर ले जाइए ताकि उन्हें सहारा मिले। धीरे–धीरे नितम्ब को हाथों से दबाइए ताकि पैर ऊपर की ओर हों और पीठ तथा कंधे एक रेखा में हों। हाथों का सहारा लगातार पीठ पर लगा रहना चाहिए। अन्ततः ठोढ़ी को छाती से लगा होना चाहिए। विपरीत क्रम से धीरे–धीरे पूर्वावस्था में वापस आइए।

विधि और निषेध

हथेलियों पर ज्यादा दबाव न दें और शरीर को उठाने के लिए झटका ना दें।
यदि हृदय रोग की शिकायत हो तो इसे अपनी क्षमता से अधिक नहीं करना चाहिए।

लाभ

सिर की ओर रक्त परिवहन पर्याप्त रूप से होता है।

इस आसन से थायराइड और पैरा–थायराइड की समस्याओं से छुटकारा मिलता है जिससे इस अंग में रक्त परिभ्रमण में वृद्धि होती है, परिणामतः ये ग्रन्थियां सामान्य रूप से काम करने लगती हैं और शरीर के अन्य महत्त्वपूर्ण अंगों के कार्यों को सुचारु बना देती हैं और शरीर की चयापचयी प्रक्रिया को स्थिर/नियमित कर देती है।

- ***धनुरासन***

स्रोतः घेरंड संहिता II:18 एच.पी. 1:25

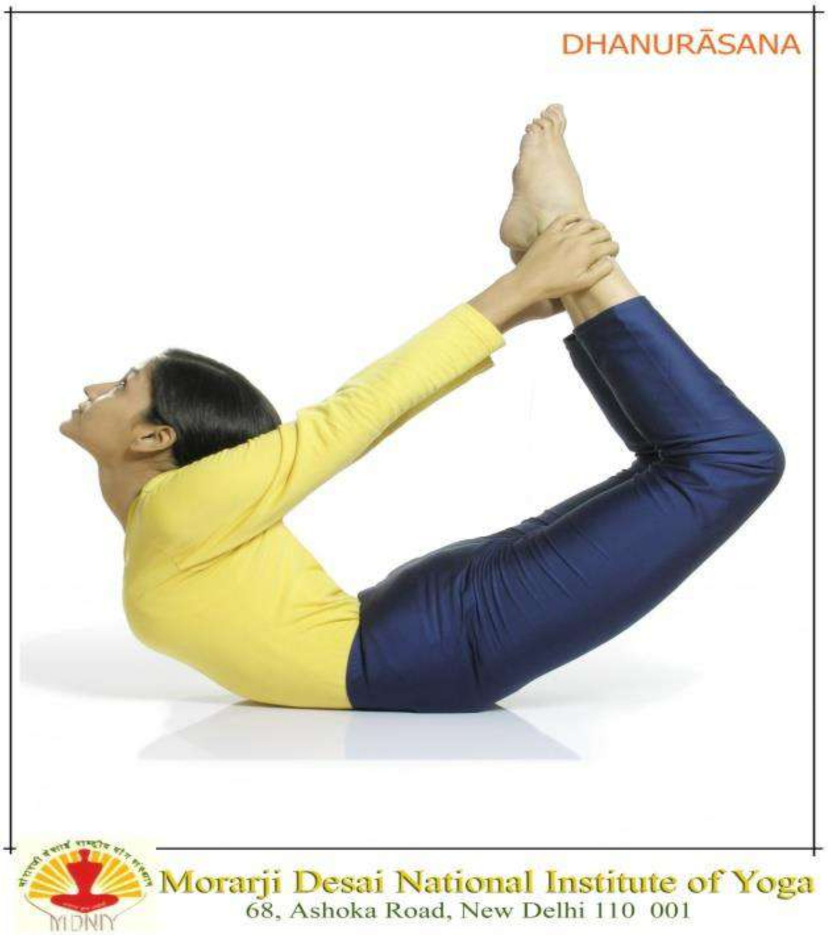

संक्षिप्त तकनीक

फर्श पर औंधा लेटकर ठोढ़ी को फर्श पर स्पर्श कीजिए और भुजाओं को शरीर के साथ समानांतर रूप में रखिए। टांगों को घुटनों से मोड़िए और टखनों को हाथ से पकडिए, धीरे–धीरे जांघ को ऊपर उठाइए, साथ–साथ सिर को भी उठाइए। सिर और छाती को उठाइए और शरीर को पेट के बल टिकाइए। कुछ सेकंडों तक इस अवस्था में बने रहिए और बाद में पहली वाली अवस्था में आ जाइए और विश्रांति की अनुभूति करें।

विधि और निषेध

धनुष का आकार बनाने की कोशिश करें।
प्रारंभिक अवस्था में घुटनों को अलग रखिए।
शरीर को झटका मत दीजिए।

लाभ

इस आसन से सुषुम्ना और पृष्ठ मांसपेशियां लचीली हो जाती हैं।
इससे कब्ज भी समाप्त हो जाती है, पाचन तंत्र की विकृतियां भी समाप्त होती हैं।

- *भद्रासन*

स्रोतः हठप्रदीपिका 1:53

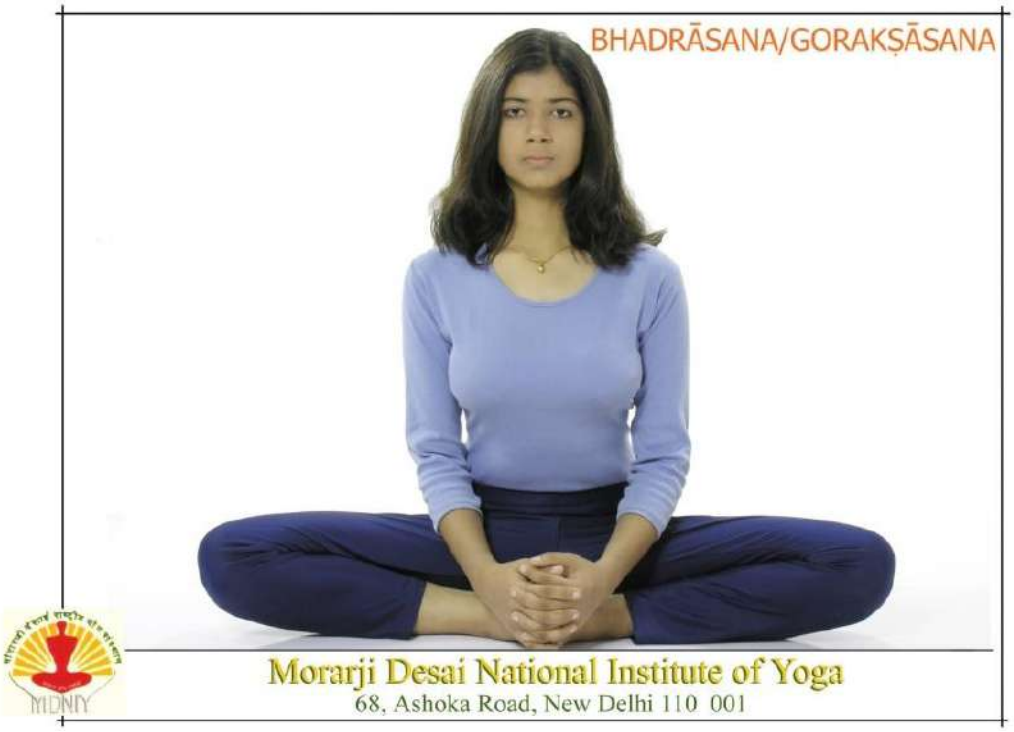

संक्षिप्त तकनीक

दंडासन में बैठिए, दोनों टांगों को एक साथ आगे मिलाइए, हाथ शरीर के अगल–बगल होने चाहिए, हथेलियां जमीन पर हों। रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी होनी चाहिए।

दोनों टांगों को धीरे–धीरे घुटनों से मोड़िए (पहले दांई ओर बाद में बांई) तथा दोनों तलवों को मिलाइए। उंगलियों से उन्हें पकड़े रखें और टखनों के चारों ओर उंगलियों की पकड़ रखिए। टांगें जमीन स्पर्श किए हुए होनी चाहिएं और घुटने भी जमीन पर होने चाहिएं।

विधि और निषेध

कमर और गर्दन सीधी होनी चाहिए। आभ्यंतर जांघों के मूल में खिंचाव होना महत्त्वपूर्ण है।

लाभ

इससे नितम्ब, घुटने और टखने के जोड़ों में बहुत अधिक लचीलापन आ जाता है और चोट लगने से बचने में सहायता मिलती है।

इससे रीढ़ के रज्जू भाग में तनाव से मुक्ति मिलती है।

यह कमर के पूरे भाग के लिए बहुत ही अच्छा आसन है तथा इससे नितम्ब, घुटने और टखनों के जोड़ों में लचीलापन आता है।

जांघों, श्रोणीय और जांघ के जोड़ो की मांसपेशियों में अच्छा खिंचाव आ जाता है जिससे वे स्वस्थ रहती हैं।

यह आसन श्रोणीय भाग के ऊतकों, नसो, नाड़ियों के विस्तारण के लिए लाभकारी है।

भद्रासन कमर और श्रोणीय हिस्सों की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में सहायक है।

- ***पद्मासन***

स्रोतः हठप्रदीपिका 1:45

यह ध्यानस्थ आसन है।

संक्षिप्त तकनीक

दंडासन में ठीक से बैठ जाइए। दाहिने पैर को हाथ की सहायता से घुटने पर रखिए और दाहिने टखने को पकड़कर पैर मजबूती से बायीं जांघ पर रखिए। इसी प्रकार बायें पैर को हाथ की सहायता से घुटने पर रखिए और पैर को दायीं जांघ पर रखिए। हाथ अपनी–अपनी ओर घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में होने चाहिए और आंखे बंद हों।

विधि और निषेध

अंतिम आसन अवस्था में सुषुम्ना सीधी अवस्था में हो। पद्मासन करने से पहले अर्द्धपद्मासन किया जाना चाहिए।

आसन करने के लिए अधिक बल न लगाएं।

अधिक दर्द में आसन न किया जाए।

लाभ

श्रोणीय भाग में रक्प की अच्छी आपूर्ति होने लगती है और शरीर के पूरे भाग में अंगों को अच्छा लाभ मिलता है। त्रिकोणात्मक आधार के कारण यह आसन बेहतर एकाग्रता बढ़ाने में सहायता करता है।

- *सिंहासन*

स्रोतः हठप्रदीपिका 1:51, 52

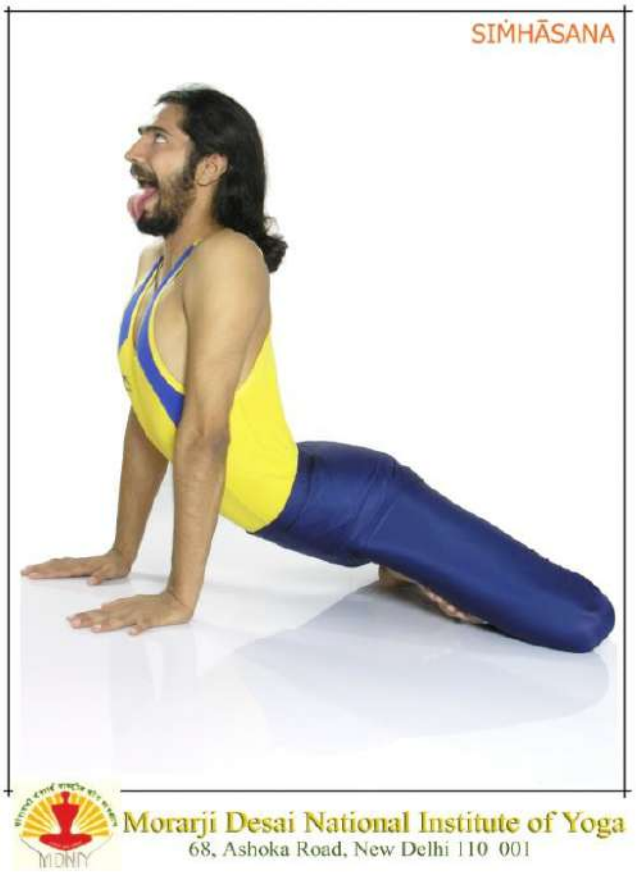

संक्षिप्त तकनीक

वज्रासन में बैठिए, धीरे–धीरे अपने नितम्बों को उठाइए और टांगों को कैंची की तरह एक–दूसरे में गुणा के चिन्ह् के रूप में रखिए और उसके ऊपर बैठ जाएं। दोनों हाथों को अपनी–अपनी ओर घुटनों पर रखिए और उंगलियों को फैला दें। जीभ जितना हो सके बाहर निकालिए और इसके साथ मुंह से दहाड़ के साथ श्वास बाहर निकालिए। कुछ देर के लिए इसी अवस्था में रहिए और धीरे–धीरे मूल अवस्था में आ जाएं।

विधि और निषेध

हाथों को सीधा रखें और जीभ को जितना संभव हो बाहर निकलें।

लाभ

टॉन्सिल की अवस्था में यह बहुत ही लाभकारी है।
जीभ में जो खुरदरापन होता है उसको दूर करने में सहायता मिलती है।

- *सुप्त–वज्रासन*

स्रोतः अज्ञात, किन्तु परंपरा पुरानी है।

संक्षिप्त तकनीक

वज्रासन में बैठिए। कोहनियों के सहारे से धीरे–धीरे कमर के बल लेट जाइए और जब तक कि सिर कंधे और कमर जमीन को न स्पर्श कर लें तब तक धीरे–धीरे क्रिया जारी रखिए। भुजाओं को एक–दूसरे के ऊपर रखकर तकिया बना लें और सिर के नीचे रख लें। घुटनों को जमीन पर एक–दूसरे से मिले होने चाहिए।

विधि और निषेध

जांघों और घुटनों के जोड़ों में समस्या होने पर इसे धीरे–धीरे करें।

डिस्क खिसकी हो और घुटने में दर्द हो तो इस आसन को न करें।

अपनी क्षमता से अधिक न करें।

घुटनों का विशेष ध्यान रखा जाए क्योंकि इस आसन में उनके ऊपर अधिक दबाव पड़ता है।

लाभ

यह आसन दमा और अन्य श्वास रोगों में बहुत ही लाभदायक है। गले के हिस्से में आगे की ओर अधिक खिंचाव होने से छाती की मांसपेशियां मजबूत होती हैं तथा स्वस्थ और लचीली हो जाती हैं।

नितम्बों की अच्छी कसरत हो जाती है और कमर की समस्याएं भी दूर हो जाती हैं।

शरीर के अगले भाग में काफी खिंचाव आ जाता है, विशेष रूप से रेखीय मांसपेशियों और पेट की दीवारों पर। इसका प्रभाव आंतों पर सकारात्मक रूप से पड़ता है।

पेट की वसा को कम करता है। कमर पतली हो जाती है।

पेट के हर तंत्र को मजबूत बनाकर इसमें सुधार लाता है।

- *जानुशिरासन*

स्रोतः अज्ञात, यह पश्चिमोत्तानासन का एक साधारण और प्राथमिक अभ्यास है।

संक्षिप्त तकनीक

सीधे बैठिए, पैरों को आगे की तरफ सीधा खींचिए। दाहिने घुटने को मोड़िए और एड़ी को बाएं पैर की जांघ के मूल में रखिए। दाएं पैर के तले को बाईं जांघ से सटाइए। पीठ को मोड़िए और धीरे–धीरे आगे की ओर झुकिए।

दोनों हाथों से बायें पैर के अंगुठे को पकड़िए। हाथों को आगे बढाइए और अंत में एक हाथ की कलाई को पकड़िए। निचली कमर से आगे को झुकिए और सांस छोड़िए। ठोढी या छाती को घुटने से स्पर्श करें। इसी प्रकार इसको दूसरी ओर से भी करें।

विधि और निषेध

छाती को अधिकतम खोलिए।
घुटने को मत मोड़िए।
ऊपरी पीठ से आगे मत झुकिए।

लाभ

यह आसन पेट की मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाने में सहायक होता है। इसलिए कब्ज नहीं होती, यकृत के रोगों में लाभ होता है।

साइटिका की संभावना नहीं होती।

किडनी सुचारू रूप से काम करती हैं।

प्रोस्टेट ग्रंथि की वृद्धि से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उत्तम होता है।

- *पादहस्तासन*

स्रोतः अज्ञात, किन्तु यह आसन पारंपरिक है।

संक्षिप्त तकनीक

सीधे खड़े हो जाइए। पैरों को साथ–साथ मिलाइए और जमीन पर पैरों के आगे टिकाइए अथवा पैरों के दोनों ओर रखिए। हाथों की उंगलियाँ आगे की ओर हों। माथे को घुटनों के बीच रखिए।

विधि और निषेध

यदि हृदय रोग से पीड़ित हों, अमलीयता की शिकायत हो तो इस आसन को न करें।

लाभ

यह आसन अपच की शिकायत में लाभकारी है, सुषुम्ना और नितम्ब जोड़ों की मजबूती के लिए हितकर है।

1.9.2 बंध

- ***उड्डीयान***

स्रोतः हठप्रदीपिका III:56

संक्षिप्त तकनीक

उड्डीयान तन्तुपट (डायफ्राम) बढ़ाने के लिए एक यौगिक अभ्यास है। इसे उड्डीयान इसलिए कहते हैं क्योंकि तन्तुपट को इसकी मौलिक अवस्था से ऊपर उठाने के लिए किया जाता है और वक्षीय विवर में काफी ऊंचा उठाया जाता है।

एड़ियों को एक फुट के अन्तर पर रखते हुए खड़े हो जाइए। पैर थोड़ा सा बाहर की तरफ हों और टांगें थोड़ी सी घुटनों के जोड़ों पर मुड़ी हुई हों। हाथों को घुटनों पर आराम से रखिए और आगे की तरफ झुकिए। मांसपेशियों को पूरा आराम दीजिए और पेट को ऊपर की तरफ दबाकर रखिए।

यह आसन पदमासन में बैठ कर भी किया जा सकता है।

विधि और निषेध

उड्डीयान हमेशा खाली पेट किया जाता है।

शुरूआत में तीन बार से ज्यादा न किया जाए।

क्योंकि इस अभ्यास में हृदय पर अधिक दबाव पड़ता है, इसलिए हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति इसको न करें।

लाभ

यह आसन सुषुम्ना नाड़ी, पीठ की मांसपेशियों और रेखीय मांसपेशियों में संतुलन बनाकर उन्हें मजबूत बनाता है। पीठ के हिस्से की वसा कम हो जाती है और साथ ही पेट की ओर ऊपर के हिस्से में खिंचाव आने से मोटाई कम हो जाती है और निचला पेट अंदर की ओर हो जाता है।

समस्त योगशिक्षा का लक्ष्य यह है कि मन को कैसे केन्द्रित किया जाए, इसके गुप्त खजाने को कैसे तलाश किया जाए, और आंतरिक, आध्यात्मिक संकाय को कैसे जागृत किया जाए।

1.9.3 क्रियाएं (षट्कर्म)

योग में शुद्धि अथवा 'शोधन' बहुत ही प्रमुख अवधारणा है जैसे शौच, नाड़ीशुद्धि, घटशुद्धि, चित्तशुद्धि ये ऐसे शब्द हैं जो शोधन की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं। शाब्दिक रूप से शोधन का अर्थ होता है आंतरिक सफाई अथवा परिशुद्धि। लेकिन व्यापक अर्थ में इस शब्द का अर्थ अनुकूलन अथवा सुदृढ़ीकरण भी होता है।

शोधन संबंधी यह प्रकरण घेरंड संहिता में अभिव्यक्त है जिसका सारांश निम्नलिखित हैः

'जैसे कि अधपका कच्चा मिट्टी का घड़ा पानी में रखने पर विघटित हो जाता है, उसी प्रकार शरीर की भी स्थिति होती है। इसलिए योग की अग्नि में शरीर को तपाइये तो यह परिशोधित होकर मजबूत हो जाता है।'

लाभ

षट्क्रियाओं का प्रभाव शारीरिक और ऊर्जा संबंधी शरीरों (कोषों) पर पड़ता है और दोषों (वात, पित्त और कफ) पर इसका प्रभाव पड़ता है। "प्राणायामों का अभ्यास करने वाले षटकर्मों का आश्रय लेते हैं।"

यदि कोई व्यक्ति शरीर के पदार्थों (वसा, बलगम और वात) के असंतुलन से पीड़ित है तो उसे स्वच्छता की प्रक्रिया वाले अभ्यासों का आश्रय लेकर शरीर को शुद्ध करना चाहिए। हठप्रदीपिका के अनुसार यह संस्तुत किया जाता है कि यदि तीन प्रकार के दोषीय पदार्थ संतुलित रूप से शरीर में मौजूद होते हैं तो इन अभ्यासों की जरूरत नहीं है।

- ***वमन धौति***

स्रोतः हठप्रदीपिका में बताया गया है कि यह अभ्यास 'गजकरणी' जैसा है। वमन धौति ठीक वैसे ही है कि जैसे 'गजकरणी'। (ह.प. II:26)

संक्षिप्त तकनीक

एक लीटर गुनगुना पानी लेकर उसमें एक चम्मच नमक मिलाइए। अच्छी तरह बैठकर इस नमकीन पानी के चार–पांच गिलास गटक लीजिए और तब तक पीते रहिए जब तक वह गले तक न पहुंच जाए। उसके बाद आगे की ओर झुकिए, शरीर को स्थिर रखकर जितना हो सके दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्य उंगलियों को एकदम गले तक घुसाइए और तब तक जारी रखें जब तक कि आमाशय का सारा पानी न निकल जाए।

विधि और निषेध

जो व्यक्ति उच्च रक्तचाप से पीड़ित है वह इस क्रिया को न करे।

लाभ

वमन प्रक्रिया से आमाशय और ऊपरी भाग में जमा अनावश्यक पदार्थ धुल जाते हैं और एसिड, बलगम और पित्त की परिशुद्धि हो जाती है।

- *त्राटक*

स्रोतः हठप्रदीपिका II:32

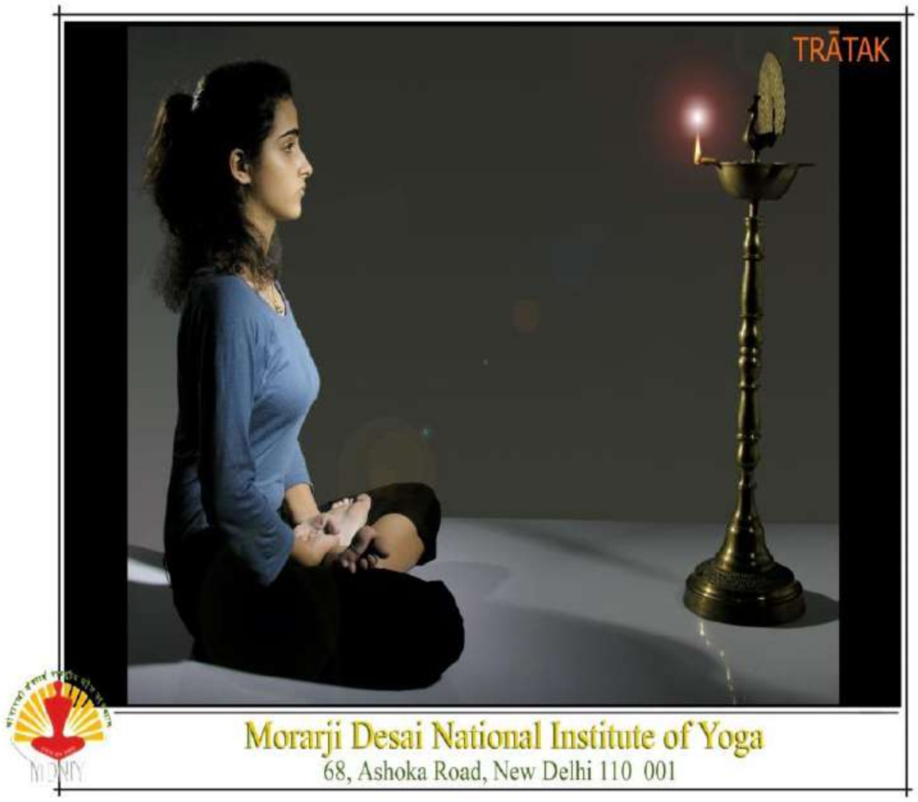

संक्षिप्त तकनीक

त्राटक में व्यक्ति कम से कम एक मीटर दूरी पर बैठकर जलती हुई लौ को अनवरत देखता रहे जबतक आंखों में आंसू न आ जाए। आंखें न झपकाएं। औसतन आंखों में आंसू आने में 5–7 मिनट तक लग जाते हैं। आंसू आने के बाद आंखों को धीरे से बंद कर लीजिए।

विधि और निषेध

आंखों पर ज्यादा जोर या दबाव न डालें।
तेज धूप में इस क्रिया को न करें क्योंकि इससे आंख का रेटिना फट सकता है।
त्राटक को अधिक देर तक न करें। आंसू आने पर विचलित न हों।

लाभ

इससे आंखें स्वच्छ हो जाती है और आंखों में चमक आ जाती है। इस क्रिया से मन शांत, एकाग्र हो जाता है और इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता में वृद्धि होती है।

1.9.4 प्राणायाम

- ***सूर्यभेदन प्राणायाम***

स्रोतः हठप्रदीपिका II:49

संक्षिप्त तकनीक

प्राणायाम की तकनीक के अनुसार दाहिनी नासिका से श्वास लीजिए और बायीं नासिका से बाहर छोड़िए।

विधि और निषेध

सूर्यभेदन प्राणायाम में अन्तःश्वास हमेशा दायीं नासिका से लिया जाता है और उसके बाद बायीं नासिका से बाहर निकालना होता है। इस अभ्यास को प्राथमिक रूप से शीत ऋतु में ही किया जाए।

लाभ

इससे शरीर में रक्त संचार संबंधी संतुलन रहता है तथा त्रिदोषिय संतुलन भी आ जाता है, इस प्रकार सभी प्रकार की शारीरिक और मानसिक कार्यप्रणाली सुचारू रूप से कार्य करने लगती है।

- ***चन्द्रभेदन प्राणायाम***

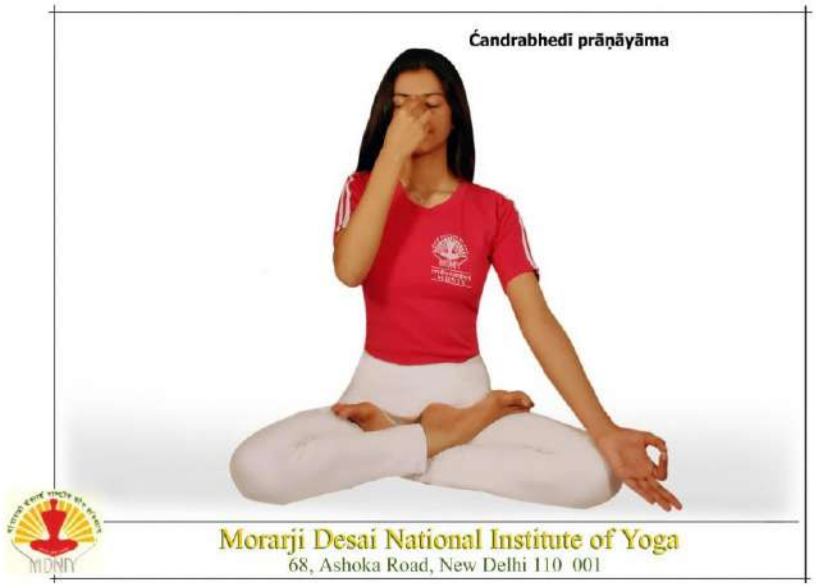

संक्षिप्त तकनीक

प्राणायाम की तकनीक के अनुसार श्वास बायीं नासिका से लेकर दाहिनी नासिका से छोड़नी होती है।

विधि और निषेध

चन्द्रभेदन प्राणायाम में अन्तःश्वसन सदैव बांयीं नासिका से और बहिःश्वसन दायीं नासिका से किया जाता है। इस अभ्यास को प्राथमिक रूप से ग्रीष्मकाल में ही किया जाना चाहिए।

लाभ

इससे शरीर में रक्त संचार संबंधी संतुलन और त्रिदोषिय संतुलन रहता है।

- *भ्रामरी प्राणायाम*

स्रोतः हठप्रदीपिका II:68

संक्षिप्त तकनीक

इस प्राणायाम में श्वसन करते समय एक नर मधुमक्खी की भांति ध्वनि उत्पन्न की जाती है जबकि श्वास को बाहर निकालते समय एक मादा मधुमक्खी जैसी ध्वनि उत्पन्न की जाती है। श्वास और प्रश्वास दोनों नासिका छिद्रों द्वारा किए जाते हैं।

विधि और निषेध

इसके लिए प्राणायाम के सामान्य निर्देशों का पालन करें।

लाभ

इस प्राणायाम के अभ्यास से मस्तिष्क से डरावने या भयंकर विचार दूर हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप मन और तंत्रिका तंत्र शांत हो जाते हैं। थाइरायड ग्लैंड के प्रकार्य में सुधार आ जाता है। इस प्राणायाम के करने से हृदय प्रसन्नता का अनुभव करता है।

- *भस्त्रिका प्राणायाम*

स्रोतः हठप्रदीपिका II:68

संक्षिप्त तकनीक

परम्परा के अनुसार सबसे पहले कपालभाति के 20 दौर जोर–जोर से करें तथा उसके तुरंत बाद एक दौर सूर्यभेदन प्राणायाम कुंभक के साथ करें। इससे एक दौर भस्त्रिका प्राणायाम हो जाता है।

(**टिप्पणीः** प्राणायाम में कुंभक एक बहुत ही उच्च क्रिया होती है इसलिए कुंभक न करें।)

विधि और निषेध

बिल्कुल सीधे बैठ जाइए और उपयुक्त दौर के लिए छाती को खोलें।
इसे क्षमता से अधिक न करें।

लाभ

इससे हृदय और फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है, इसलिए यह ब्रोनकाइटिस और दमा के लिए लाभकारी है।

पूरे शरीर में रक्तसंचार में सुधार होता है।

पेट की मांसपेशियां स्वस्थ होती हैं और गंदगी दूर होती है।

- ***शीतली प्राणायाम (जीभ से हिस्स की आवाज)***

स्रोतः हठप्रदीपिका II:57

संक्षिप्त तकनीक

श्वास लेने के दौरान जीभ को पत्ते की तरह दोनों किनारों से मोड़ें जैसे ट्यूब होती है। अब इस ट्यूब से श्वास लीजिए।

विधि और निषेध

इस क्रिया को केवल ग्रीष्मकाल में ही करें।

लाभ

इस प्राणायाम से ग्रंथि बढ़ने जैसी बीमारी समाप्त हो जाती है, यकृत, तिल्ली और पित्त जैसे रोगों में लाभ होता है। इससे भूख और प्यास का नियमन हो जाता है।

1.10 सारांश

जैसा कि आपने इस पहली इकाई 'योग और यौगिक अभ्यासों की प्रस्तावना' में देखा है इससे आपको योग की एक झलक मिल जाती है, साथ ही इसकी परिभाषाएं योग का उद्‌गम, ऐतिहासिक विकास, अष्टांग योग पर विस्तृत टिप्पणी, योग और इसकी धाराएं, योग के दो संप्रदाय, स्वस्थ जीवनयापन के लिए योगाभ्यास, इसमें शामिल हैं।

योग के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं शरीर को विश्रान्ति, श्वसन क्रिया को धीमा करना तथा मन को शांत करना। इससे हमें संतुलन और समत्व का मार्गदर्शन मिलता है जो बौद्धिक स्तर पर लाभकारी है अच्छे और बुरे के बीच अन्तर करने की शक्ति प्राप्त होती है जिससे हम किसी भी परिस्थिति में संतुलित रहते हैं।

1.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

1. योग के विकास के इतिहास पर चर्चा कीजिए।
2. यम और नियमों का विस्तृत विवरण दीजिए और यौगिक जीवन में इसके महत्त्व को बताइए।
3. चार प्रकार के प्राणायामों पर चर्चा कीजिए।
4. योग की चार धाराओं पर चर्चा कीजिए।
5. स्वस्थ जीवनयापन के सिद्धांतों का वर्णन करिए।

इकाई 2: योग ग्रंथों का परिचय

संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 अधिगम उद्देश्य
2.3 एक अनुशासन के रूप में योग का औचित्य
2.4 योग और यौगिक ग्रंथों का वर्गीकरण
    2.4.1 पतंजलि का "योगसूत्र"
    2.4.2 हठ योग ग्रंथ
2.5 पतंजलि के अष्टांग योग को समझना
2.6 हठ योग परंपरा
    2.6.1 आसन
    2.6.2 प्राणायाम
    2.6.3 पांच तत्त्वों पर धारणा
    2.6.4 मुद्रा एवं बंध
    2.6.5 षट्कर्म
2.7 पतंजलि योग और हठ योग के बीच संपूरकता
2.8 पतंजलि योग सूत्र में ध्यान संबंधी प्रक्रियाएँ
2.9 सारांश
2.10 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

2.1 प्रस्तावना

योग पर इस पाठ्यक्रम की पूर्ववर्ती इकाई (अर्थात् इकाई 1) में आपने सीखा कि पतंजलि के अनुसार योग चित्त या मन की गतिविधियों को नियंत्रित करने की कला तथा विज्ञान है। जैसा कि आपको ज्ञात है, आज तनाव और टूटन, चिंताएँ और कुंठा मानव जीवन को क्षत–विक्षत कर रहे हैं; ऐसी स्थिति में आज के मनुष्य के लिए योग शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस स्थिति के अनुसार यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस अनुशासन को समझें जो हम सब के जीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है और जीवन को जीने और बेहतर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

स्थिति हमें चेतावनी दे रही है कि हमें इसके अध्ययन की कितनी आवश्यकता है जो सीधे हममें से प्रत्येक के जीवन से संबंधित है और बेहतर जीवन में योगदान कर सकता है। वर्तमान इकाई में, आपका परिचय योग ग्रंथों से कराया जाएगा, जिनके द्वारा आप यौगिक साहित्य का सबसे प्रामाणिक स्रोत ज्ञात कर सकते हैं।

जैसा कि आपको ज्ञात है, अंतिम विश्लेषण के रूप में योग को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है, पतंजलि योग एवं हठ योग। इस इकाई में प्रदत्त विवरण द्वारा, आप योग–शास्त्र पर लिखित प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन कर अपने ज्ञान व विवेक को विकसित कर सकते हैं।

2.2 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- यह औचित्य सिद्ध कर सकेंगे कि योग के प्रति एक सही दर्शन विकसित करने के लिए यौगिक ग्रंथों का अध्ययन क्यों महत्त्वपूर्ण है;
- पतंजलि के योग सूत्र के चार पादों में निहित मुख्य विषय को संक्षेप में स्पष्ट कर सकेंगे;

- व्याख्या कर सकेंगे कि अष्टांग योग किस प्रकार मानव या व्यक्तित्व विकास के लिए एक एकीकृत/समग्र दृष्टिकोण है;
- क्रिया योग के अर्थ और महत्त्व को स्पष्ट कर सकेंगे;
- योग पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित अन्य योग ग्रंथों को बता सकेंगे;
- पतंजलि योग एवं हठ योग के बीच संबंध स्थापित कर यह बता सकेंगे कि वे एक दूसरे के पूरक हैं;
- कुछ योगासनों, मुद्रा, क्रिया और प्राणायामों के नाम बता सकेंगे तथा उनका अभ्यास कर सकेंगे;
- अभ्यास के दौरान पालन करने योग्य सामान्य अनुदेशों का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 एक अनुशासन के रूप में योग का औचित्य

अध्ययन के एक विषय के रूप में योग एक विषय भर लगता है, लेकिन वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पता चलेगा कि इसकी काफी शाखाएं व प्रवृत्तियां समय–समय पर विकसित हुई, उदाहरण के तौर पर, राज योग या अष्टांग योग, हठ योग, भक्ति योग, जप योग, कर्म योग, ज्ञान योग, लय योग इत्यादि। इनके अभ्यास करने की विधियों के बीच थोड़ा–बहुत अंतर हो सकता है, लेकिन अंतिम उद्देश्य समान है। यह मुख्य रूप से एक आध्यात्मिक अनुशासन है। इसके बावजूद, यह सांसारिक मानव जीवन की वास्तविकताओं, समाज और परिवेश में अपनी जगह को अनदेखा नहीं करता। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है, यह मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी मानव आवश्यकताओं को पूरा करता है। वर्तमान समय में दुनिया भर में योग की माँग में तीव्र वृद्धि हुई है। यह स्थिति विभिन्न कारणों से है। इनमें सबसे प्रमुख है तनाव। अत्यधिक तनाव के कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। तनाव और इसके बुरे प्रभाव से निबटने के लिए, बड़ी संख्या में लोग योग की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

अतएव, योग को एक विज्ञान के रूप में जानने के लिए योग के मूल ग्रंथों का अध्ययन करना बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। इसका वैश्विक–दृष्टिकोण क्या है? यह बदलती परिस्थितियों के बीच में एक व्यक्ति को कैसे देखता है? यह एक सुरक्षित जीवनशैली के निर्माण हेतु किन सुझावों को प्रस्तुत करता है? किस प्रकार का आचरण व्यक्तिगत शांति और सामाजिक सद्भाव के लिए उपयोगी है?

इन सब मुद्दों तथा कुछ और अधिक जानने के लिए हमें योग के पारंपरिक ग्रंथों का अध्ययन करना अत्यंत उपयोगी होगा। योग के कुछ प्रकाशित ग्रंथों में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त रूपरेखा के साथ हम उनका उल्लेख कर रहे हैं।

2.4 योग और यौगिक ग्रंथों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के एक व्यापक पैमाने पर, योग को दो प्रकारों में विभक्त किया गया है। एक, पतंजलि योग, जैसा कि उनके योग सूत्र में वर्णित है, और दूसरा हठ योग, जिस पर कई ग्रंथ उपलब्ध हैं।

2.4.1 पतंजलि का "योगसूत्र"

यह ग्रंथ महर्षि पतंजलि द्वारा रचित है। यह ग्रंथ सूत्रों के रूप में लिखा गया है। सूत्र–शैली भारत की प्राचीन दुर्लभ शैली है जिसमें विषय को अति संक्षिप्त शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है। यह चार पादों में विभाजित है जिसमें 196 सूत्र निबद्ध हैं। इस ग्रंथ में महर्षि पतंजलि ने यथार्थ रूप में योग के आवश्यक दार्शनिक आदर्शों और सिद्धांतों को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुति की अपनी शैली में यह एक चमत्कार है। पतंजलि का "योग सूत्र", योग विषय पर एकमात्र सबसे प्रामाणिक पुस्तक के रूप में स्थापित है।

इसके चार पाद निम्नलिखित हैंः **समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद, और कैवल्य पाद।**

प्रथम पाद मौलिक योग की प्रकृति और इसकी कुछ तकनीकों से संबंधित है। यह इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करता है कि 'योग क्या है?' समाधि की स्थिति योग का सार रूप है। इसलिए, इस खंड में

समाधि पर व्यापक चर्चा की गई है। इस अध्याय में भी मानव मन (चित्त) और उसकी सभी अस्थिर दशाओं (विचित्ति) की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरे पाद में क्लेश (कष्ट) की प्रकृति पर चर्चा और मानव कष्टों का हल खोजने का प्रयास किया गया है। यह एक प्रश्न उठाता है कि 'हमें योगाभ्यास क्यों करना चाहिए?' यह मानव जीवन और इसकी दशाओं का एक उत्तम विश्लेषण प्रदान करता है।

इस ग्रंथ के इस भाग में अभ्यास के आठ अंग (घटक) प्रस्तुत किए गए हैं जो इस प्रकार हैं: ***यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान* और *समाधि***। इन आठ घटकों के पहले पांच घटक बहिरंग योग या बाह्य प्रकृति के योग रूप कहे गए हैं। इन पांच घटकों को आरंभिक तैयारी के घटकों के रूप में जाना जा सकता है। बाद के तीन घटकों (***धारणा, ध्यान, समाधि***) को अंतरंग योग का घटक कहा गया है क्योंकि वे अंतर्मन को साधने का कार्य करते हैं। इनका अभ्यास हमें अंतरंग योग की ओर उन्मुख करता है जिसमें समाधि की स्थिति सन्निहित है। यह अध्याय हमें योग के धरातल पर मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक और नैतिक रूप से तैयार करता है। तीसरा खंड विभूति पाद है जिसका पहला भाग अंतरंग योग, अष्टांग योग के अंतिम तीन घटक (समाधि), पर विस्तार से प्रकाश डालता है। ये उच्च तकनीकें यौगिक जीवन के रहस्यों को प्रकट करती हैं। दिव्य शक्तियों (विभूतियों एवं सिद्धियों) का अनुभव होता है। इस पाद का दूसरा भाग सिद्धियों पर विवरण प्रस्तुत करता है।

कैवल्य पाद इस ग्रंथ का अंतिम अध्याय है। यह योगाभ्यास से संबंधित दार्शनिक समस्याओं की गहरी छानबीन करता है। यह अध्याय मन की आवश्यक प्रकृति, लौकिक अवधारणा, मानव की ऐच्छिक प्रकृति और कैसे इच्छाएँ अनुकूलन और बंधन का कारण हैं; के बारे में भी चर्चा करता है। मुक्ति (कैवल्य) की स्थिति को किस प्रकार अनुभव किया जा सकता है और इस प्रकार की शुद्ध चेतना द्वारा किस तत्त्व की व्युत्पत्ति होती है, को स्पष्ट करता है।

"योगसूत्र" का अध्ययन एक श्रमसाध्य कार्य है। यह स्पष्टतः अत्यधिक उच्च मानसिकता की प्रतिपूर्ति करता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ध्यान और अडिग अध्यवसाय दोनों ही आवश्यक शर्तें हैं। अतएव् बारंबार अध्ययन हेतु अध्येता को एक या दो सूत्रों के अभ्यास का परामर्श दिया जाता है। साथ ही आधुनिक भाषाओं में उपलब्ध टीकाएँ भी काफी सहायक सिद्ध होती हैं। एक समय में एक ही सूत्र का सार ग्रहण करना अधिक उपयोगी होगा, बनिस्बत इसके कि पूरी पुस्तक को तेजी से पढ़ जाना।

अष्टांग योग (योग सूत्र 2.29)

यहाँ नीचे योग के आठ घटकों में से प्रत्येक को संक्षिप्त रूप में परिभाषित किया जाता है। इनके बारे में विस्तार से पढ़ने के लिए आप इस इकाई का खंड 2.5 देख सकते हैं :

1) **यमः** इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सन्निहित हैं।

   - *अहिंसाः* शब्दों से, विचारों से और कर्मों से किसी को हानि न पहुँचाना।
   - *सत्यः* विचारों में सत्यता, परम–सत्य में स्थित रहना।
   - *अस्तेयः* चोर–प्रवृति का न होना, किसी अन्य की वस्तु को (बिना उसकी अनुमति के) नहीं लेना। तात्पर्य यह कि आचरण और व्यवहार में ईमानदारी बरतना।
   - *ब्रह्मचर्यः* चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना अथवा सभी इंद्रिय–जन्य सुखों में संयम बरतना।
   - *अपरिग्रहः* आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना।

   ये सभी गुण जीवन में लागू किए जाने पर आगे योग प्रशिक्षण के लिए एक मजबूत नैतिक आधार निर्मित करते हैं। यम आत्म–संयमित व्यवहार हेतु अपरिहार्य है। इन्हें महाव्रत, महान सार्वभौमिक प्रतिज्ञा भी कहा जाता है।

2) **नियमः** इसमें शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर–प्रणिधान सन्निहित हैं।

- *शौचः* आंतरिक और बाह्य दोनों ओर की शुद्धि।
- *संतोषः* लालच और लोभ पर नियंत्रण तथा प्रत्येक स्थिति में संतुष्ट रहने का प्रयास करना।
- *तपः* शारीरिक और मानसिक दोनों स्थितियों में तपस्या, आत्मानुशासन। यह भी योग और तप के विभिन्न कठिन अभ्यास हेतु बनाया गया है जो आंतरिक पवित्रता का प्रदायक है।
- *स्वाध्यायः* ग्रंथों का अध्ययन और उनके पाठों पर मनन तथा स्वयं ज्ञान का सृजन करना। यह भी गहरे चिंतन को प्रस्तुत करता है अथवा इस तरह के प्रश्नों की ओर उन्मुख करता है कि 'मैं कौन हूँ', 'मैं यहाँ क्यों हूँ', 'मैं किस ओर बढ़ रहा हूँ?' इस प्रकार के प्रश्नों पर चिंतन, मनन करना तथा इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का प्रयास करना।
- *ईश्वर–प्रणिधानः* ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा।

3) **आसनः** इसका अर्थ है– यह शरीर और मन पर नियंत्रण हेतु विभिन्न शारीरिक मुद्राओं का अभ्यास।

4) **प्राणायामः** प्राण पर नियंत्रण तथा सूक्ष्म और लंबे समय तक साँस लेने में क्षमता ग्रहण करने हेतु श्वास–लेने संबंधी खास तकनीकें।

5) **प्रत्याहारः** इंद्रियों को अंतर्मुखी करके उनके संबंधित विषयों से विमुख करना।

6) **धारणाः** यह अभ्यास किसी एक वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने से संबद्ध है, जिससे कि वांछित एकाग्रचित्तता विकसित की जा सके।

7) **ध्यानः** इसका तात्पर्य मन को निर्बाध रूप से एक ही पदार्थ वस्तु की ओर केंद्रित किए रखना है।

8) **समाधिः** शुद्ध चेतना में विलय अथवा आत्मा से जुड़ना, शब्दों से परे परम–चैतन्य की अवस्था।

नोटः *अष्टांग योग के विभिन्न घटकों के बारे में विस्तार से पढ़ने के लिए कृपया इस इकाई के खंड 2.5 का अवलोकन करें।*

कार्यकलाप 7

1. योग की महत्त्वपूर्ण परंपरागत शैलियाँ कौन–कौन सी हैं?

2. अष्टांग योग के विभिन्न घटकों (अंगों) को उचित क्रम में लिखिए।

2.4.2 हठ योग ग्रंथ

निम्नलिखित खंड में हम हठ योग पर उपलब्ध कुछ महत्त्वपूर्ण परंपरागत ग्रंथों से आपका परिचय करा रहे हैं:

1) हठप्रदीपिका

हठ प्रदीपिका स्वात्मराम द्वारा रचित है। हठप्रदीपिका की पांडुलिपि के कुछ ही संस्करण उपलब्ध हैं। हालांकि दो प्रमुख प्रकाशित संस्करण प्रचलन में हैं।

क) हठप्रदीपिका; कैवल्यधाम, लोनावला द्वारा प्रकाशित। इसमें 400 छंद हैं जो 5 अध्यायों में फैले हुए हैं।

ख) हठप्रदीपिका; वर्ष 2011 में लोनावला योग संस्थान द्वारा प्रकाशित। इसमें दस अध्याय और लगभग 650 छंद हैं। इसमें कुछ अतिरिक्त अध्याय हैं जिनमें ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, राजयोग, काल ज्ञान और विदेहमुक्ति इत्यादि विषयों पर चर्चा है। यह एक पूर्ण ग्रंथ जान पड़ता है।

नाथ पंथ के सिद्ध योगियों के अनुसार, मानव शरीर पांच मूल तत्त्वों से मिलकर बना है। यह हठ योग के इन छह अंगों पर बल देता है: ***आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान*** और ***समाधि***। योगी के लिए भोजन ग्रहण करने और निराहार रहने की भी संस्तुति की गई है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सिद्ध, पद्म, मत्स्येंद्र इत्यादि जैसे आसनों का शारीरिक मुद्राओं के रूप में वर्णन किया गया है।

शरीर के विषाक्त पदार्थों की सफाई के लिए धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाति नामक षट्कर्म का वर्णन किया गया है।

नाडियों की और अधिक शुद्धि के लिए, श्वास लेने की विभिन्न तकनीकों का वर्णन है। ये आठ कुंभक हैं: सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा केवल।

इस पुस्तक में दस मुद्राओं का वर्णन किया गया है, जैसे: महामुद्रा, महाबंध इत्यादि। इसमें जालंधर, उड्डीयान तथा मूल तीन बंधों का वर्णन किया गया है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, मानवीय लक्षण (सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं) का वर्णन है।

इसके पश्चात् राजयोग का वर्णन है जो समाधि की तकनीक है। यह जीवात्मा और परमात्मा का मिलन है। यह अवस्था प्राणायाम की उच्च तकनीक के अभ्यास के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए शांभवी या खेचरी मुद्रा का भी अभ्यास किया जाता है।

लय की स्थिति प्राप्त करने के लिए नादानुसंधान या रहस्यमय आंतरिक ध्वनि का वर्णन किया गया है। विभिन्न आंतरिक रहस्यमय या चमत्कारी ध्वनियों का श्रवण योग की चार दशाओं आरंभ, घट, परिकाय तथा निष्पत्ति द्वारा सुनिश्चित होता है।

काल ज्ञानः प्रकृति की शक्तियों में कुछ विशिष्ट संकेत छिपे होते हैं जो किसी योगी के निधन की आगामी भविष्यवाणी व्यक्त कर सकते हैं। यह ज्ञात होने पर वह शरीर छोड़ने का निर्णय कर सकता है।

मुक्ति (आध्यात्मिक मुक्ति) दो प्रकार की हो सकती हैं, जीवन्मुक्ति (जीते–जी मुक्ति) और विदेहमुक्ति (मृत्यु के बाद मोक्ष)

नोटः *अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास; बिहार योगपीठ जैसे अन्य कई संस्थानों ने हठप्रदीपिका पर टीकाएँ प्रकाशित की हैं। वे भी बहुत महत्त्व की हैं।*

2) घेरंड संहिता

इस ग्रंथ का एक महत्त्वपूर्ण संस्करण कैवल्यधाम, लोनावला द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह लगभग सौ तकनीकों का वर्णन करता है। यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

हठप्रदीपिका से भिन्न, जहाँ हठयोग का समर्थन किया गया है, यह ग्रंथ हठयोग शब्द के स्थान पर 'घटस्थ योग' का समर्थन करता है। यह गुरु घेरंड और शिष्य चंडकापाली के मध्य वार्त्तालाप के रूप में है।

इसमें छह क्रियाओं का उल्लेख है, जिसमें छह क्रियाएँ मिलकर 13 धौति, 2 बस्ति, 1 नेति, 1 त्राटक, 1 नौलि और 3 कपालभाति के अभ्यास कराते हैं।

इसमें 32 आसनों का वर्णन है। पुस्तक में 25 मुद्राओं का वर्णन है; प्रत्याहार की 3 तकनीक, प्राणायाम के 10 अभ्यास, 3 ध्यान और 6 समाधियाँ वर्णित हैं।

यद्यपि यह घटस्थ योग (शरीर के माध्यम से योग) है, तथापि तकनीक इस प्रकार की हैं कि योगाकांक्षी धीरे–धीरे भौतिक स्थिति से ज्ञानातीत/अनुभवातीत स्थिति की ओर अग्रसर होता है।

शारीरिक परिशुद्धता प्राप्त करने हेतु 6 अभ्यास संस्तुत किए गए है जिनके अभ्यास फलस्वरूप रहस्यमय अनाहत ध्वनि सुनी जा सकती है, खेचरी और शांभवी में पूर्णता प्राप्त की जा सकती है, जिन से दिव्यदृष्टि विकसित हो सकती है।

काया शोधन सुनिश्चित करने हेतु धौति की तकनीक पर्याप्त विस्तृत रूप में उपलब्ध है।

इस ग्रंथ में वेदांतिक पाठ के अंश भी दृष्टव्य हैं।

3) सिद्ध–सिद्धांत–पद्धति

यह संभवतः एकमात्र ऐसी पुस्तक है जो नाथ योगियों के हठ पंथ के दार्शनिक सिद्धांतों पर प्रकाश डालती है, इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है। यह वर्ष 2010 में लोनावला योग संस्थान द्वारा प्रकाशित की गई है। यह एक बहुत ही व्यवस्थित ढंग से लिखा गया ग्रंथ है जिसमें 350 छंद हैं जो छह अध्यायों में विभाजित है। इसके रचयिता गुरु गोरखनाथ हैं।

- पहला अध्याय अनाम (गुमनाम) से आरंभ होनेवाले विकास की प्रक्रिया का वर्णन करता है।
- दूसरे अध्याय में मानव शरीर की चर्चा है जिसमें चक्र, आधार इत्यादि का वर्णन है।
- तीसरे अध्याय में मानव शरीर के प्रति एक गहरी अंतर्दृष्टि विकसित की गई है। इस शरीर को ब्रह्मांड की एक प्रतिकृति कहा गया है।
- चौथे अध्याय में शरीर के आधार या पिंडाधार के साथ–साथ ब्रह्मांड के बारे में भी चर्चा है। शक्ति इसका सार/आधार है।
- पांचवें अध्याय में उस प्रक्रिया का वर्णन है जिसके द्वारा व्यक्ति पूर्णत्व के साथ संतुलन स्थापित कर सकता है।
- छठे अध्याय में किसी अवधूत योगी तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों की प्रकृति और चारित्रिक विशेषताओं की चर्चा है।

4) गोरख शतक

यह हठ योग पर एक छोटी पुस्तिका है जिसमें लगभग सौ छंद हैं। इसमें योग के छह अंगों (षडंग योग) का वर्णन है जबकि यम और नियम को छोड़ दिया गया है। यह एकता के उपनिषदीय अद्वैत आदर्श का अनुसरण करता है और इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु साधनों का भी सुझाव देता है।

यह सभी चौरासी आसनों में सिद्धासन और कमलासन (पद्मासन) पर जोर देता है।

इसमें चक्र, नाड़ियों तथा विभिन्न प्राणों का भली–भाँति वर्णन किया गया है। प्राणायाम की कुछ तकनीकों का सविस्तार वर्णन है। यह भी वर्णन है कि प्राण की प्रक्रिया को सुषुम्ना से होकर महापद्म (सहस्रार) की ओर उत्प्रेरित किया जा सकता है।

इसकी असाधारण विशेषताओं में से एक विशेषता यह है कि इसमें पाँच धारणाओं का मानसदर्शन, बीज मंत्र इत्यादि के साथ पांच मूल तत्त्वों पर अभ्यास का रोचक वर्णन किया गया है, ताकि अभ्यासकर्ता इन तत्त्वों पर नियंत्रण हासिल कर सकते हैं।

5) कुंभक पद्धति

इसकी रचना काशी निवासी रघुवीर ने की थी।

इसमें प्राणायाम की विभिन्न तकनीकों और चेतना के विभिन्न स्तरों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जिनमें से एक अध्यात्मोन्मुख साधक अपनी आभ्यंतर यात्रा के दौरान गुजरेगा। प्राणायाम की लगभग 72 तकनीकें बताई गई हैं, जिनमें कई अब तक अज्ञात हैं। उनमें से अधिकांश की प्रकृति अद्वितीय हैं। इन तकनीकों के नाम हठ योग के प्रकाशित ग्रंथों में से किसी में नहीं पाए जाते हैं।

कुंभक को दो भागों में विभाजित किया गया है, एक मेरु कुंभक (केवल कुंभक से तुलना की जा सकती है) और दूसरा अमेरु कुंभक। एक और वर्गीकरण है, अन्तः कुंभक (आंतरिक कुंभक), बाह्य कुंभक (बाहरी कुंभक) और स्तंभवृत्ति (केवल कुंभक) है।

6) हठरत्नावली

यह पुस्तक श्रीनिवासयोगी ने लिखी है। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय नहीं है जितनी हठप्रदीपिका। इसे हठयोगरत्नसारणी या रत्नावली भी कहा जाता है। इसकी सामग्री चार अध्यायों में विभाजित है। विभिन्न विषयों का वितरण इस प्रकार है :

प्रथम अध्यायः मंत्र, लय, राज और हठ योग महायोग के अंतर्गत वर्णित हैं। शुद्धि की आठ प्रक्रियाएँ (बजाय सामान्य छह के) वर्णित हैं। ये चरबी और विषाक्त पदार्थों को ही नहीं, वरन् चक्र को भी शुद्ध करते हैं।

द्वितीय अध्यायः नौ कुंभकों का विस्तृत वर्णन दिया गया है; आठ के अतिरिक्त नौवां कुंभक भुजंगीकरण है।

तृतीय अध्यायः इस अध्याय में हमें चौरासी आसनों की पूरी सूची और विवरण मिलता है।

चतुर्थ अध्यायः नादानुसंधान के साथ–साथ इस अध्याय में समाधि के बारे में वर्णन है। आरंभ, घट, परिकाय और निष्पत्ति जैसी हठ की चार प्रगतिशील स्थितियाँ इस अध्याय की विषय–वस्तु है।

टीका की विशेषता है इसकी स्पष्ट भाषा–शैली, जो एक आम पाठक के लिए सहज ग्राह्य है।

इस विषय पर चर्चा के बारे में स्पष्टीकरण उनके अनुभव और तर्कसंगत दृष्टिकोण को निदर्शित करता है।

7) हठतत्त्वकौमुदी

यह संभवतः योग पर प्रकाशित उपलब्ध ग्रंथों में सबसे बड़ा संग्रह है जो 56 अध्यायों में फैला है। इस बृहद् योग ग्रंथ के लेखक काशी (बनारस) निवासी सुंदरदेव थे। हठ योग तकनीकों पर लगभग सभी जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध है। अपने दृष्टिकोण के समर्थन में लेखक द्वारा अनेक मूल उद्धरण उद्धृत किए गए हैं। अधिकांश उद्धरण पारंपरिक और प्रामाणिक स्रोतों से लिए गए हैं। इससे ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गई है।

8) शिव संहिता

यह हठ योग पर एक और पुस्तक है। यह चौखंबा संस्कृत सीरीज कार्यालय, बनारस से प्रकाशित है।

9) शिवस्वरोदय

यह चौखंबा संस्कृत सीरीज कार्यालय, बनारस द्वारा प्रकाशित की गई है।

उपर्युक्त उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त, हठ योग पर कई और संस्थाओं द्वारा संपादित और प्रकाशित गंभीर ग्रंथ उपलब्ध हैं। इन कार्यों में से अधिकांश पहली बार योग अभ्यासकर्ता के लिए लाए गए हैं और इनमें से कई तो दुर्लभ पुस्तकें हैं। इस विषय पर और गहराई से अध्ययन के लिए इन पुस्तकों की सहायता ली जा सकती है।

इनमें से कुछ हैं:

1. भावदेव मिश्र की युक्तभावदेव
2. चयनित योगोपनिषद् का विवेचित संस्करण
3. मंडलब्राह्मणोपनिषद् एवं नादबिंदूपनिषद्
4. अमनस्कयोग लययोग पर एक ग्रंथ
5. अमृतवाक्यम्
6. दत्तात्रेययोगासनशास्त्रम्

2.5 पतंजलि के अष्टांग योग को समझना

पतंजलि योग सूत्र, जिसकी चर्चा सूत्र 2.29 में की गई है, आठ अंगों से मिलकर बना है, अतः इसे अष्टांग योग भी कहा जाता है। इन अंगों को संक्षेप में निम्नलिखित अनुच्छेदों में वर्णित किया गया है। ये पतंजलि योग का सार दिग्दर्शित करते हैं। यह उत्तरोत्तर रूप में मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान के लिए एक साधन है।

1) **यमः** इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सम्मिलित हैं।

- ***अहिंसाः*** कर्म, वचन या विचार से भी किसी को हानि नहीं पहुँचाना।

  आप अपने इलाके में एक गली में चल रहे हैं। आप एक घटिया छोटे कुत्ते को देखते हैं और उसे एक लात देते हैं। हुह! खूब बहादुरी दिखाई जा रही है! क्या यह बहादुरी का काम है? पुनः विचार करें। इससे क्या आपको कुछ प्राप्त हुआ? एक असहाय और निर्दोष कुत्ते को चोट पहुँचाना, जिसने आपको कोई हानि नहीं पहुँचाई!

  यह छोटी सी बात लगती है, लेकिन छोटी नहीं है। कमजोरों को हानि पहुँचाने की आपकी यह प्रवृत्ति कहीं आप के अन्तरतम से निकलती है। आप किसी जंगली भैंसे जैसे मजबूत जानवर के साथ ऐसी हरकत नहीं कर सकते। सभी जानवरों के प्रति दयालु रहें। आपको कैसा अनुभव होगा यदि केवल मस्ती के लिए अकारण कोई आपको शारीरिक चोट पहुँचाए? वास्तव में आपको बहुत बुरा लगेगा! जानवरों की भी भावनाएँ आप जैसी ही होती हैं, लेकिन वे मनुष्य की तरह अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ हैं बस। पतंजलि ने अहिंसा पर लंबा विवरण दिया है। हम बाद में कभी उस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

- ***सत्यः*** सत्यवादिता, सभी प्रकार के व्यवहार में ईमानदारी। सत्य बोलना एक व्यक्तिगत और सामाजिक गुण है, लेकिन ऐसे अवसर भी आ सकते है जब दो वांछनीय मूल्य के मध्य एक द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसी अवस्था में सच कभी–कभी मुसीबत भी बन सकता है। अतः हमें सावधानीपूर्वक चुनाव करना चाहिए। जरा निम्नलिखित दृष्टांतों पर विचार कीजिए।

  क) आप सड़क पर चल रहे हैं। सड़क सुनसान है। देर शाम का समय है। अचानक आप एक युवा महिला को बेतहाशा दौड़ते देखते हैं। कुछ ही दूरी पर तीन लड़के इरादतन उसका पीछा कर रहे हैं। वह एक मोड़ लेती है और छुप जाती है और आप इसे देख लेते हैं। लड़के आपके पास आकर उसके बारे में पूछते हैं। अब आपके पास दो विकल्प हैं। सच बोलने का। लेकिन इससे वह महिला खतरे में पड़ जाएगी। एक अन्य विकल्प झूठ बोलकर लड़कों को गुमराह करने का है। इससे महिला पर आया खतरा टल जाएगा। आप निश्चित रूप से झूठ बोलकर युवा महिला की जिंदगी बचाने का निर्णय लेते हैं। ऐसा झूठ जो किसी निर्दोष को मुसीबत से बचा पाए एक बड़ा सत्य है।

  ख) आप सड़क पर चल रहे हैं। शाम का समय है। अचानक आप कंधों पर चोरी का एक बैग टाँगे भागते हुए एक चोर को देखते हैं। वह गलियों के अँधेरे कोने में खुद को छुपाना चाहता है। कुछ पुलिसकर्मी उसके पीछे लगे हैं और वे उसके बारे में आपसे पूछते हैं। आप क्या करेंगे? आप सच बोलते हैं, तो चोर पकड़ा और दंडित किया जाएगा जो काफी कष्टदायक हो सकता है। आप झूठ बोलकर पुलिसकर्मियों को गुमराह कर सकते हैं। इससे चोर दर्दनाक सजा से बच जाएगा। फिर भी आप पुलिस को चोर का पता बता देते हैं।

  ग) एक और उदाहरण लें। आपकी हाल ही में शादी हुई है। आपको हमेशा सच बोलने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। शादी से पहले आपके कुछ संबंध थे। आप अपनी पत्नी के साथ ईमानदार रहना चाहते हैं ताकि आप दोनों के बीच कोई गलतफहमी पैदा न हो। आप सोचते हैं कि इस तरह आप हमेशा के लिए उसका विश्वास जीत सकते हैं। आप उसके सामने यह सिद्ध कर सकते हैं कि आप कितने भले हैं। लेकिन यह उसे भड़का भी सकता है। एक रूढ़िवादी पृष्ठभूमि से आनेवाली पत्नी कभी इस बात को नहीं पचा पाएगी कि उसके पति का किसी अन्य महिला के साथ संबंध रहा है। इस प्रकार, बहुत संभव है कि सत्य बोलने और दिल खोलकर रख देने से उसकी भावनाएँ बेहद आहत हो जाएँ और आपका नव–विवाहित जीवन अचानक ही एक झटके के साथ समाप्ति के मुँहाने पर आ खड़ा हो।

ऐसी स्थिति में यह जानना आवश्यक है कि हमें कब, कैसे और किन परिस्थितियों में सच नहीं बोलना चाहिए। हम कह सकते हैं कि सत्य उस संदर्भ पर निर्भर करेगा जिसमें आप अपने आप को पाते हैं।

- ***अस्तेयः*** चोरी न करना; किसी भी पराई वस्तु को हाथ नहीं लगाना। इसका तात्पर्य है, सभी मानवीय व्यवहार तथा आचरण में ईमानदारी बरतना।

  क) शहर के मध्य भाग में एक अच्छा मॉल है। आप मॉल में एक दुकान पर खरीददारी के लिए जाते हैं। यहाँ आप अकसर आते रहते हैं। एक घंटे में अपनी पसंद की सभी वस्तुओं कपड़े, प्रसाधन सामग्री इत्यादि लेकर आप टोकरी में डाल लेते हैं। इस दिन के लिए खरीददारी आपको पर्याप्त लगती है और आप दुकान के मुख्य द्वार पर स्थित काउंटर की ओर चल पड़ते हैं। काउंटर पर महिला पंक्ति में प्रतीक्षारत खरीददारों के साथ काफी व्यस्त है। थोड़ी देर बाद आपकी बारी आती है। आप भुगतान करते हैं। आपका बिल 29,540 रुपए का बनता है। आप 30,000 रुपए देते हैं। महिला जल्दबाजी में बाकी पैसे लौटाती है। नोट मुड़ेतुड़े और उलझे हुए हैं। आप जाँच करते हैं तो 500 का एक नोट ज्यादा मिलता है। आपके मन में दो विचार आते हैं। ईमानदारी से एक अतिरिक्त नोट वापस लौटा दिया जाए। आप यह भी सोचते हैं कि यदि आपने अतिरिक्त नोट नहीं लौटाया तो महिला को अपनी जेब से भरना होगा। एक और विचार आता है, 'मैं पैसे न लौटाऊँ, साथ ले जाऊँ।' लेकिन कहीं भीतर से कोई फुसफुसाता है, 'यह आपको शोभा नहीं देता। महिला को पैसे लौटा दो। यह ठीक नहीं है। वास्तव में यह चोरी है।' 'मैं पराई वस्तु को हाथ भी नहीं लगा सकता।' आप पैसे महिला को लौटा देते हैं। यह 'अस्तेय' है, चोरी न करना है। वह आपकी उदारता के लिए कृतज्ञतापूर्वक मुस्कान के साथ आपका धन्यवाद अदा करती है। आप अंदर से बहुत हल्का और सहज महसूस करते हैं। मानो दिल से कोई भारी बोझ उतर गया हो।

  ख) एक और उदाहरण लें। एक गली में एक दुकान के पास आपको एक मोबाइल पड़ा मिलता है। आसपास कोई नहीं होता। यह एक महँगा और अच्छा फोन है। आप उठाने को ललचाते हैं, पर तभी ठिठक जाते हैं। एक दूसरा विचार आता है। 'ये मेरा नहीं है।' इसे पास के दुकानवाले को सौंप दूँ। या फोन के मालिक को कॉल करके फोन वापस कर दूँ। आप दूसरे विकल्प के साथ जाते हैं। आप फोन मालिक को कॉल करते हैं। वह बहुत खुश होता है। जल्दी से आकर दिली मुस्कान के साथ आपको धन्यवाद देता है। आप मन की गहराई में संतुष्टि महसूस करते हैं। शांति की एक गहरी भावना आपको खुशी से भर देती है। ये 'अस्तेय' का अभ्यास है।

  'अस्तेय' (चोरी न करना) यम के पांच गुणों में से एक है। अस्तेय का अभ्यास भ्रष्टाचार को दूर कर देगा।

- ***ब्रह्मचर्यः*** सभी इंद्रिय–जनित सुखों में संयम बरतना। चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना।

  योग के दिशा–निर्देशों के अनुसार, अभ्यासकर्ता (साधक) को विपरीत लिंगी अथवा समलिंगी के साथ सभी शारीरिक संपर्कों से बचना चाहिए। बेशक, अभ्यासकर्ता यदि विवाहित है तो अपनी पत्नी/पति के साथ शारीरिक संपर्क, कर सकता है लेकिन नियंत्रित तरीके से।

  अकेले में हम हर समय ब्रह्म का चिंतन कर सकते हैं। एक आदर्श व्यवहार, जो वांछनीय है, का अनुसरण कर सकते हैं।

- ***अपरिग्रहः*** आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना। अपनी वास्तविक आवश्यकता से अधिक धन–संपत्ति या वस्तुओं के संग्रह से बचना।

क) आपके पास पहले से ही दो महँगे मोबाइल फोन है और आप बहुत खुश हैं। आपके करीबी दोस्त ने अभी–अभी एक बड़ा कीमती नवीनतम मॉडलवाला फोन खरीदा है। वह बड़ी शेखी के साथ सभी दोस्तों को अपना फोन दिखाता है। आपको अच्छा नहीं लगता। आपकी खुशी काफूर हो जाती है। आपके पास पैसा है। आप सोचते हैं कि एक ज्यादा महँगा फोन खरीद लूँ ताकि अपने दोस्त को नीचा दिखाया जा सके।

इसी के साथ आप बड़ी मानसिक शांति महसूस करते हैं। आपको लगता है कि इस प्रकार आप अपने अहं की तुष्टि कर सकते हैं। अब आपके पास एक विकल्प है। आप शांत रह सकते हैं।

झूठे अहंकार के शिकार होने से बचें। दो बार सोचें। कल को आपका कोई दूसरा दोस्त और ज्यादा कीमती हैंडसेट खरीद लेगा। और इसके बाद कोई दूसरा दोस्त। यह एक अंतहीन सिलसिला है। कब तक आप हर दूसरे दिन एक नया हैंडसेट खरीदने की इस प्रक्रिया को बनाए रख सकते हैं? क्या ये सब आवश्यक है? हरगिज नहीं! कृपया ध्यान रखें, अगर आप अनावश्यक रूप से कोई वस्तु खरीदते हैं तो कोई वास्तविक जरूरतमंद उससे वंचित रह जाता है। अच्छी भावनाएँ आपको भटकने से बचाती हैं और मन की शांति बनी रहती है। आप तय करते हैं कि अनावश्यक धन खर्च नहीं करेंगे, बल्कि भविष्य में बेहतर इस्तेमाल के लिए पैसे बचाएँगे।

विचार करें, आज अति–अधिकार की भावना ही समाज में हताशा का एकमात्र कारण लगता है।

2) **नियमः** इसमें शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान सम्मिलित हैं।

- ***शौचः*** आंतरिक और बाह्य दोनों ओर शुद्धता, सफाई।

  आपने स्नान किया? आपके कपड़े साफ हैं? आपका कमरा साफ और स्वच्छ है? कमरे की चीजें अपनी जगह व्यवस्थित हैं? आपके आसपास साफ–सफाई है?

  शौच जीवन के सभी क्षेत्रों में साफ–सफाई के बारे में है। यह एक स्वस्थ आदत है।

- ***संतोषः*** संतुष्टि; लालच और लोभ पर नियंत्रण रखना।

  इस समय जो कुछ भी आपके पास है, उसमें खुश रहना। अगर आप इस पल में खुश नहीं हैं, तो आप शायद भविष्य में कभी खुश नहीं होंगे। आप खुशी को टाल रहे हैं। यह न करें। क्या आपके पास एक मारुति 800 है? तो तहेदिल से उसे चलाने का आनंद लें। इसके साथ ही प्रगति करने के लिए प्रयास करते हैं। यदि आप मारुति 800 के साथ संतुष्ट नहीं हैं, तो भले ही बेंज आ जाए, आपको खुशी नहीं मिलेगी।

- ***तपः*** शारीरिक और मानसिक दोनों स्थितियों में तपस्या, आत्मानुशासन। यह भी योग और तप के विभिन्न कठिन अभ्यास हेतु बनाया गया है जो आंतरिक पवित्रता का प्रदायक है।

  कड़ी मेहनत। अपनी पढ़ाई में कड़ी मेहनत करें। सफलता का कोई छोटा रास्ता नहीं है। किसी के लिए भी नहीं। यह कभी नहीं था, यह कभी नहीं होगा।

- ***स्वाध्यायः*** पवित्र और उत्तम ग्रंथों का अध्ययन और उनकी विषयवस्तु पर मनन। यह भी गहरे चिंतन को प्रस्तुत करता है अथवा इस तरह के प्रश्नों की ओर उन्मुख करता है कि 'मैं कौन हूँ', 'मैं यहाँ क्यों हूँ', 'मैं किस ओर बढ़ रहा हूँ?' श्रवण (अनुभवजन्य), मनन (चिंतन) तथा निदिध्यासन (सत्यापन तथा प्रयोग) द्वारा ज्ञान का सृजन।

क) तो जीवन के नियमित कामकाज से कुछ समय निकालें। अपने कमरे के एक कोने में बैठें। शरीर कों शांत व स्थिर बनाएँ। शरीर के किसी भी भाग को न हिलाएँ। कुछ देर गहरी साँस भरें। फिर मन के अनंत में झाँकें। देखें आपका मन क्या कर रहा है। उठते विचारों को देखें। जैसे कि आप एक फिल्म देख रहे हैं। विचारों को देखें जो शून्य से उठते हैं और शून्य में ही खो जाते हैं। यह विचारों की एक कभी न खत्म होनेवाली रेखा है, जैसे चींटियों की रेखा। जैसे ही एक विचार मन के पटल पर आता देता है, अगले ही पल गायब हो जाता है। फिर एक दूसरा उठता है और बहुत जल्द वह भी खो जाता है।

बारीकी से देखें। दो विचारों के बीच कोई अंतर है? है, पर बहुत छोटा। पल के एक छोटे से अंश में कोई विचार जन्म नहीं लेता। यह अन्तराल बिल्कुल शुद्ध है, विचार शून्य। एक विशुद्ध चेतना। आपकी विशुद्ध आत्मा। शुद्ध आनंदमय आत्मा।

आप में विचार वातावरण के प्रभावन के फलस्वरूप आते हैं। आपकी इच्छाओं से। आपकी परवरिश से। आपकी शिक्षा से। यह आपका 'सत्य आत्मन' नहीं है। ये अर्जित विचार हैं। ये आपको व्यस्त और बेचैन, रखते हैं। आपको शायद ही इन विचारों से बाहर आकर शांति मिलती हो।

अभ्यास के माध्यम से, आप दो विचारों के बीच अपने वास्तविक आत्मन् की झलक पा सकते हैं। जैसे–जैसे अभ्यास बढ़ेगा, अन्तराल बड़ा होता जाएगा। इसका तात्पर्य है, परमानंद का विस्तार होना।

क्या यह एक महान् विचार नहीं है? निश्चित ही है।

ख) यह करने का एक और तरीका है। उन विचारों का निष्पक्षता से अध्ययन करें। वे नकारात्मक रहे हैं या सकारात्मक? सकारात्मक हैं, तो क्या आप उनमें वृद्धि कर सकते हैं? हाँ, आप कर सकते हैं। नकारात्मक हैं, तो क्या आप उन्हें कम कर सकते हैं? हाँ आप कर सकते हैं। कैसे? मजबूत संकल्प के माध्यम से। आप ऐसा करने में विफल हो सकते हैं। लेकिन यह असफलता आपको मजबूत बनाएगी।

- ***ईश्वर–प्रणिधानः*** ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा।

कमरे के कोने में बैठें। मन में कहें, 'हे प्रभु! यह कार्य संपन्न होगा। इससे आपको बहुत शांति मिलेगी।

3) आसनः शारीरिक मुद्राओं का अभ्यास शरीर को स्थिरता प्रदान करता है।

पतंजलि ने आसन की परिभाषा कुछ ऐसे दी है – ***स्थिरसुखमासनम्***। विभिन्न योगासन–तकनीकों के विस्तृत विवरण के लिए आप अभ्यास (इकाई 4) का अवलोकन कर सकते हैं।

4) प्राणायामः प्राण पर नियंत्रण तथा सूक्ष्म और लंबे समय तक साँस लेने में सक्षम बनाने हेतु श्वास–लेने संबंधी खास तकनीक से संबंधित।

प्राणायाम पर कुछ विवरण खंड नीचे 2.6.1 में प्रस्तुत किया गया है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिः अष्टांग योग की इन तकनीकों के विनियमन हेतु योगसूत्र में मौलिक सिद्धांत उपलब्ध हैं। हालांकि, योगसूत्र में अभ्यास अनुपलब्ध हैं। हठ एक परंपरा है। यहां तक कि आसन और प्राणायाम के लिए भी हम हठ ग्रंथों की ओर देखते हैं। इसमें जो भी अभ्यास किया जाएगा, प्रत्याहार का अभ्यास कहा जाएगा। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि हठ ग्रंथ योग विषय पर अभ्यास पुस्तकें हैं।

5) प्रत्याहारः "आहार से विमुखता"। इंद्रियों को अंतर्मुखी करके उनके संबंधित विषयों (आहार) से विमुख करना। आहार शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ है जो इन्द्रियों द्वारा अंदर जाता है। प्रत्याहार का अर्थ है उस इन्द्रिय का उस के प्राकृतिक आहार (विषय) पर नियंत्रण करना।

प्रत्याहार की कुछ तकनीकें, जैसे कि हठप्रदीपिका – 6.4–5 (लोनावला योग संस्थान) में दी गई हैं, निम्नलिखित हैं :

एक योगी अनुकूल हो या प्रतिकूल, कान से जो भी सुनता है, उसे स्वयं का ही रूप जानकर उसको त्याग देता है।

त्वचा द्वारा छुआ गर्म या ठंडा, चाहे जो हो; प्रख्यात योगी उसे स्वयं का ही रूप जानकर त्याग देता है।

6) धारणाः यह अभ्यास एक ही वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने से संबंद्ध है, जिससे कि चित्त की वांछित एकाग्रता विकसित की जा सके।

7) ध्यानः इसका तात्पर्य मन को निर्बाध रूप से एक ही प्रदत्त वस्तु की ओर केंद्रित रखने से है।

ध्यान सभी विचारों से मन को मुक्त कर देने की तकनीक है। किसी भी तत्त्व पर अडिग एकाग्रता से किया गया अभ्यास ध्यान के रूप में परिभाषित किया गया है।

ध्यान दो प्रकार का होता हैः सगुण और निर्गुण।

सगुण ध्यानः हठप्रदीपिका 6.20 (लोनावला योग संस्थान) के अनुसार इसका अभ्यास पाँच तत्त्वों (पृथ्वी, वायु, जल, आकाश और अग्नि) में से प्रत्येक पर किया जाता है। इस प्रकार पाँच सगुण ध्यान हो सकते हैं। इस तरह के प्रत्येक ध्यान अभ्यास के लिए तत्त्व विशेष की विशेषताओं (गुणों) का प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, जल तत्त्व पर ध्यान :

जल, जो अमृत समान है, तीनों लोकों में प्रवाहित और प्लावित है; इसे ह्रदय में सीमाबद्ध करना चाहिए। ऐसा करके, अभ्यासकर्ता तरल पदार्थ (जल) के भय से मुक्त हो जाता है। (हठप्रदीपिका 6. 25, लोनावला योग संस्थान)

निर्गुण ध्यानः यह गुण या गुणों के ध्यान के बिना किया जाता है। अतः यह ध्यान का सार या पूर्ण रूप है। निर्गुण ध्यान और समाधि में अन्तर करना कठिन है।

8) समाधिः शुद्ध चेतना में विलय अथवा आत्मा से जुड़ना, शब्दों से परे परम–चैतन्य की अवस्था।

समाधि की अवस्था प्राप्त करने पर योगी को गंध, स्वाद, रूप, स्पर्श, सांस तथा स्वयं या दूसरों के बारे में कोई अनुभूति नहीं होती है। (हठप्रदीपिका 7.6, लोनावला योग संस्थान)

स्पष्ट है, अंतिम चार घटक अभ्यास की दृष्टि से काफी जटिल हैं।

कार्यकलाप 8

1. दैनिक जीवन में यम और नियम के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

2. ध्यान की किसी मुद्रा में बैठकर घंटे–आध घंटे ध्यान करें। संक्षेप में अपने अनुभव नीचे लिखिए।

2.6 हठ योग परंपरा

हठ योग ग्रंथों में बड़ी संख्या में अभ्यास दिए गए हैं। आगे हम इन अभ्यासों के बड़े समूहों पर एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

2.6.1 आसन

हठयोग का मानना है कि योगाभ्यास में आसन की अग्रणी भूमिका है।

आसन, बनाई गई शारीरिक मुद्राएँ हैं जिन्हें कुछ समय के लिए ग्रहण करने के बाद छोड़ दिया जाता है। सुखासन, सिद्धासन इत्यादि ऐसे आसन हैं जिन्हें लंबे समय तक किया जा सकता है।

इस तरह के सैकड़ों आसन हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें करना और अधिक देर तक उस मुद्रा में बने रहना कठिन होता है। कुछ सरल आसन हैं। जिनके अभ्यास से शरीर कोमल और ऊर्जावान बन जाता है। मन को आराम महसूस होता है। श्वास सुचारू रूप से चलती है।

अधिकांश हठ ग्रंथों में उल्लिखित आसनों का कुछ न कुछ विवरण दिया गया है। एक आम कहावत है कि आसन चौरासी होते हैं। हठरत्नावली में सभी चौरासी आसनों का नामोल्लेख है। वह सूची पूर्ण लगती है।

2.6.2 प्राणायाम, आठ कुंभक

हठयोग द्वारा प्राणायाम के अभ्यास पर बहुत जोर डाला गया है। नाडियों की सफाई, मन को आराम, भावनाओं का प्रबंधन, विभिन्न शारीरिक रोगों का प्रबंधन, इंद्रियों का प्रत्याहार, ध्यान की स्थिति में प्रवेश, धारणा करना, प्रत्याहार के उपक्रम, ध्यान का अभ्यास और समाधि की स्थिति को प्राप्त करना; हठ योग का कहना है कि प्राणायाम मूल अभ्यास है।

कुंभक की पुस्तक में प्राणायाम की सत्तर से अधिक तकनीकों का वर्णन है। इतनी बड़ी संख्या योग की किसी भी पुस्तक में नहीं देखी जा सकती है। हठयोगप्रदीपिका में श्वसन क्रिया की आठ तकनीकों का वर्णन है, जिन्हें कुंभक के रूप में जाना जाता है।

प्राणायाम (कुंभक) के दो व्यापक वर्ग हैं, एक **सहित** और दूसरा **केवल**। केवल कुंभक, सहित कुंभक का स्वाभाविक फल है। केवल कुंभक समाधि की स्थिति के समतुल्य है।

नाडी शुद्धि प्राणायाम के सभी उन्नत तरीकों के लिए एक प्रमुख शर्त है।

प्राणायाम का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है, सुषुम्ना के मध्य मार्ग के माध्यम से प्राण के प्रवाह को सिर के ऊपर सहस्रार चक्र, (शुद्ध चेतना केंद्र) तक भेजना।

इस प्रकार प्राणायाम एक उदात्त उद्देश्य के प्रति कार्य करता है।

नाडीशोधन, उज्जायी और सूर्यभेदन जैसे कुछ प्राणायाम काफी लोकप्रिय हैं और व्यापक रूप से किए जाते हैं। यहाँ इनकी तकनीकें दी गई हैं :

- ***नाडीशोधन प्राणायाम:*** अपने दाएं हाथ के अंगूठे से नाक के दाएं नासिका छिद्र को बंद कर लें और बाएं छिद्र से भीतर की ओर सांस खीचें। अब बाएं छिद्र को अंगूठे के बगल वाली दो अंगुलियों से बंद करें। दाएं छिद्र से अंगूठा हटा दें और सांस छोड़ें। अब इसी प्रक्रिया को बाएं छिद्र के साथ दोहराएं। इस प्रकार तीन महीने में नाडीशुद्धि की जा सकती है।
- ***उज्जायी प्राणायाम:*** मुंह को बंद करके नाक के दोनों छिद्रों से वायु को घर्षण ध्वनि के साथ तब तक अंदर खींचें (पूरक करें) जब तक वायु फेफड़ों में भर न जाए। फिर कुछ देर आंतरिक कुंभक (वायु को अंदर ही रोकना) करें। फिर नाक के दाएं छिद्र को बंद करके बाएं छिद्र से वायु को धीरे–धीरे बाहर निकाल दें (रेचन करें)। वायु को अंदर खींचते व बाहर छोड़ते समय गले से खर्राटें की आवाज निकलनी चाहिए। यह उज्जायी कुंभक है। इस तरह इस क्रिया का लगातार अभ्यास करें।
- ***सूर्यभेदन प्राणायाम:*** पद्मासन में बैठकर दायीं नासिका से साँस को अंदर खींचें (पूरक करें)। यथाशक्ति कुंभक की स्थिति में रहने के बाद बायीं नासिका से साँस बाहर निकाल दें (रेचक करें)। इस तरह इस क्रिया का लगातार अभ्यास करें।
- ***आठ कुंभक हठ परंपराओं के नाम हैं:*** सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा केवल।

कार्यकलाप 9

1. योग पर किन्हीं तीन महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के नाम लिखिए।

2. षट्कर्म और तीन प्राणायाम के नाम लिखिए।

2.6.3 पांच तत्त्वों पर धारणाएँ

धारणाएँ योग की उन्नत तकनीकें होती हैं। हठप्रदीपिका 6.12–16, (लोनावला योग संस्थान) में पांच तत्त्वों पर निम्नलिखित धारणाएँ व्यक्त की गई हैं :

- ***भुवो–धारणाः*** पृथ्वी तत्त्व जो गहरे सुनहरे–पीले रंग का है, इसका 'ल' बीज रूप, ब्रह्मा पीठासीन देवता हैं; इसके चार कोने हैं, जो हृदय में केंद्रित है, इस पर प्राण के साथ ध्यान केंद्रित करके पाँच घटिकाओं तक बनाए रखा जाना चाहिए। यह भुवो धारणा है, जो संयम लाती है और जिसके द्वारा पृथ्वी तत्त्व पर विजय पाई जाती है।

- ***वारिणी–धारणाः*** जल तत्त्व, जो अर्द्धचंद्र और कुंद फूल (चमेली) के सदृश श्वेत है, जो गले में स्थित है। इसका 'वा' बीज रूप, विष्णु पीठासीन देवता हैं। इस स्थान पर प्राण के साथ ध्यान एकाग्र रूप

से केंद्रित करके पाँच घटिकाओं तक बनाए रखा जाना चाहिए। यह वारिणी धारणा है, जो योगी को तीव्र विष को पचाने की शक्ति प्रदान करती है।

- ***वैश्वानरी–धारणाः*** अग्नि तत्त्व जो तालु में स्थित है और जो इंद्र–गोप कीट (किरिमदाना) की तरह गहरा लाल है; इसके तीन चमकीले कोने हैं; इसका 'र' बीज रूप – मूँगे जैसा लाल चमकीला और रुद्र पीठासीन देवता हैं। इस स्थान पर प्राण को केंद्रित करके पाँच घटिकाओं तक बनाए रखना चाहिए। यह वैश्वानरी धारणा है, जो योगी को अग्नि तत्त्व को नियंत्रित करने की शक्ति प्रदान करती है।
- ***वायवी–धारणाः*** वायु तत्त्व जो दोनों भौंहों के बीच में स्थित है; नेत्रबिंदु सदृश चमकीला, गोलाकार, वायु से मिलकर बना; इसका 'र' बीज रूप और ईश्वर पीठासीन देवता हैं। इस स्थान पर प्राण के साथ ध्यान को एकाग्र रूप से केंद्रित करके पाँच घटिकाओं तक बनाए रखा जाना चाहिए। यह वायवी धारणा है, जो योगी को अंतरिक्ष में विचरण की शक्ति प्रदान करती है।
- ***नभो–धारणाः*** आकाश तत्त्व, जो ब्रह्मरंध्र में स्थित है और जल की भाँति शुद्ध है। यह (अनसुने) नाद का वाहक है; इसका 'ह' बीज रूप और सदाशिव पीठासीन देवता हैं। इस स्थान पर प्राण के साथ मन को एकाग्र करके पाँच घटिकाओं तक बनाए रखा जाना चाहिए। यह नभो–धारणा है, जो योगी को मोक्ष प्रदान करती है।

2.6.4 मुद्रा और बंध

मुद्राः मध्ययुगीन साहित्य पर मुद्राओं का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अपनी चर्चा को हम केवल हठ योग की मुद्राओं तक ही सीमित रखते हैं। हठप्रदीपिका में दस मुद्राओं का वर्णन है। घेरंड संहिता में 25 मुद्राओं की चर्चा है। इन सभी ग्रंथों में मुद्राओं का व्यापक वर्णन किया गया है।

घेरंड संहिता के अनुसार, मुद्राओं का उद्देश्य संतुलन या स्थिरता स्थापित करना है, वहीं हठप्रदीपिका के अनुसार मुद्राओं का उद्देश्य कुंडलिनी शक्ति जागरण है।

हठप्रदीपिका की दस मुद्राएँ हैं:

महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रौली और शक्तिचालिनी।

यहाँ हम केवल उड्डीयान एवं मूलबंध की चर्चा करेंगे:

उड्डीयान (यह एक बंध भी है): पेट के बल (प्रणत अवस्था में) लेटकर नाभि को ऊपर की ओर खींचें। उड्डीयान मुद्रा मृत्यु को जीत लेती है, जैसे शेर किसी हाथी पर काबू पाता है।

मूलबंध (यह एक मुद्रा भी है): गुदा के छिद्रों को सिकोड़कर ऊपर की ओर खींचे रखना मूलबंध कहलाता है। मूलाधार को एड़ी से दबाएँ, गुदा को सिकोड़ें तथा अपान को ऊपर की ओर उठाएँ।

बंधः ये अनिवार्य रूप से मुद्रा रहे हैं और संख्या में बहुत कम हैं। हठ योग में प्राणायाम–अभ्यास परंपरा के ये प्रायः अनिवार्य अंग के रूप में रहे हैं। उनमें से कुछ तो अपवाद के तौर पर स्वतंत्र रूप से अभ्यास में रहे हैं। हम कह सकते हैं कि प्राणायाम की तकनीक में प्रचलित ये मुद्राएँ बंध कहलाती हैं, क्योंकि वे प्राण–धाराओं को एक विशेष क्षेत्र में बाँधती हैं और प्राणिक धाराओं को एक विशेष दिशा में प्रवाहित करती हैं। सामान्य तौर पर अभ्यास में आनेवाले बंध और उनके स्थान इस प्रकार हैं :

	बंध	**स्थान**
1.	जालंधर	गला
2.	उड्डीयान	उदर
3.	मूलबंध	गुदा
4.	जिह्वा	मुख

उपर्युक्त सभी बंध सांस को अंदर थामकर अभ्यांतरकुंभक के निदर्शन के दौरान लगाए जाते हैं। प्राणायाम के दौरान बंध का प्रयोग हठयौगिक प्राणायाम की एक विशेष तकनीक जैसा प्रतीत होता है। इससे सुषुम्ना के मार्ग में दबाव बनाकर प्राणिक धाराओं को उत्प्रेरित किया जा सकता है। तीनों बंधों के सामूहिक प्रभाव द्वारा इड़ा और पिंगला नाड़ियों की कार्यप्रणाली को विनियमित करके सुषुम्ना को सक्रिय किया जा सकता है।

2.6.5 षट्कर्म

भीतरी शारीरिक शुद्धि की ये तकनीकें हठ् के एक खास लक्षण को निर्मित करती हैं। इस प्रयोजन के लिए विभिन्न अतिरिक्त तरीके लागू किए जाते हैं। कुछ हठ ग्रंथों में से इन्हें प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने से पूर्व की आवश्यक क्रियाएँ माना गया है। इस तरह के अभ्यास द्वारा शरीर की अतिरिक्त वसा और विषाक्तता से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार प्राण को आसानी से और सुचारू रूप से नाड़ियों द्वारा, विशेष रूप से सुषुम्ना के माध्यम से निर्दिष्ट किया जा सकता है। यदि नाड़ियाँ ही शुद्ध नहीं होंगी तो प्राण मध्य गह्वर के माध्यम से ब्रह्मरंध्र तक नहीं पहुंच सकता है। और इसके बिना, कोई व्यक्ति (साधक) मनरहितता (अनमना भाव) की स्थिति का अनुभव नहीं कर सकता है।

इस औचित्य के आधार पर, हठ परंपरा षट्कर्म प्रस्तावित करती है।

षट्कर्म का समूह हैः धौति, बस्ती, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति हैं।

यहाँ हम नेति और कपालभाति की तकनीकों का वर्णन कर रहे हैं :

नेतिः एक लगभग 23 सेंटीमीटर माप का चिकना सूती कपड़ा नाक से भीतर डालकर मुँह से धीरे–धीरे बाहर निकालते हैं। यह नेति है।

कपालभातिः लोहार की धौंकनी के समान दाएँ और बाएँ नासापुटों से श्वास छोड़ें। इस प्रसिद्ध कपालभाति योग द्वारा कफ़ संबंधी विकार दूर होते हैं।

2.7 पतंजलि योग और हठ योग के बीच संपूरकता

आधुनिक समय में, हठप्रदीपिका और घेरंड संहिता जैसे ग्रंथों ने अपने मूर्त, स्पष्ट, आसान और परिसीमित योगाभ्यासों पर जोर देकर हठ योग प्रशिक्षण को एक अधिक व्यावहारिक रूप दे दिया है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान तथा शारीरिक परिशोधक प्रक्रियाओं (शुद्धि क्रिया या षट्कर्म) उत्पन्न सूक्ष्म शारीरिक प्रभावों ने आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों का ध्यान भी आकर्षित किया है। योग पर शोधपत्र अब पहले की तुलना में कहीं अधिक ग्रहणशील ढंग से खेल, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मनोविज्ञान और शारीरिक शिक्षा के विषय पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में स्वीकार किए जा रहे हैं।

हालाँकि शिक्षित मन योग के किसी अन्य रूप की बजाय हठ योग प्रणाली द्वारा अधिक प्रभावित है, तथापि पतंजलि योग का महत्त्व कभी कम नहीं आंका जा सकता है। पतंजलि ने लगभग सभी प्रकार के साधकों के स्वभाव के अनुरूप योगाभ्यासों की एक पूरी शृंखला प्रदान की है। पतंजलि मन की क्रियाओं के रूपांतर की समाप्ति के लिए 'अभ्यास' और 'वैराग्य' की बात करते हैं जो योगी को 'द्रष्टा' अथवा यौगिक 'द्रष्टा सिद्धांत' की ओर ले जाते हैं। चित्त जो आमतौर पर एक बाहरी तत्त्व द्वारा निर्देशित चेतना है, जैसा कि सभी भारतीय दर्शनों में बताया गया है, इसे स्थिर और विकाररहित बनाने से पूर्व आत्मन् (एक स्व–विद्यमान चेतना) जिसे भारतीय सोच के अनुसार अस्तित्व के पूर्णरूपेण व्यापक बुनियादी सिद्धांत के रूप में समझा जाता है, को अपने असली स्वरूप में स्थापित करना आवश्यक है। चित्त, जिसमें व्युत्पत्ति की दृष्टि से मन, बुद्धि और अहंकार सम्मिलित हैं, भीतर की ओर निर्देशित और संयोजित होकर विभिन्न सरल मनोवैज्ञानिक तकनीकों (पतंजलि योग सूत्र 1.21, 2.23, 1.28, 1.33–39) के साथ मन को आनंदित करता है (यह समाधि की स्थिति की प्राप्ति में मददगार है और जन्मजात क्लेशों के उन्मूलन का एक साधन है)। अष्टांग योग (एक व्यवस्थित प्रवाह चार्ट जो योग में एक क्रमिक और निश्चित प्रगति प्रदायक है) आत्मन् को दीप्त करता है।

स्वात्माराम ने संकेत दिया है कि प्राण के प्रवाह पर नियंत्रण से चित्त पर नियंत्रण हो जाता है। साथ ही चित्त पर नियंत्रण से प्राण पर नियंत्रण होता है। इस प्रकार, एक तरह से योग की दोनों प्रणालियाँ अन्योन्याश्रित हैं। पतंजलि योग में दो व्यापक चरण हैं बहिरंग और अंतरंग। अपनी इंद्रियों के स्तर पर कार्य करने और प्रकृति में व्यवहारगत होने के कारण बहिरंग स्थिति को हठ योग के आरंभिक चरणों के बराबर समझा जा सकता है। पतंजलि योग और हठ योग दोनों में हालाँकि समाधि, को पूर्ण मुक्ति का अंतिम लक्ष्य माना गया है; परंतु यह हठ योग है जिसमें आसन, क्रिया, नाद अनुसंधान इत्यादि जैसे मूर्त अभ्यासों के रूप में "नियम पुस्तिका" की भांति प्रविधियों की सूची प्रदान की गई है और यम, नियम, वैराग्य, चित्तशुद्धि और प्रसाद आदि पर जोर दिए बिना समाधि की आरंभिक स्थिति तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया गया है। संक्षेप में, हठ योग, स्थूल शरीर के स्तर पर आसान और एक छोटी पद्धति है, जबकि पतंजलि सीधे चित्त के सूक्ष्म शरीर या मन पर शुरू होता है। हालांकि इन दोनों का परिणाम समाधि अवस्था की प्राप्ति है।

हालांकि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यौगिक खोज के उन्नत चरण में, हठ योग मानसिक दुनिया के अंतरतम को छू लेता है। वहीं अगर गलत तरीके से योग का अभ्यास करते समय प्राण भटक जाता है तो दैहिक और मानसिक बीमारियाँ आ घेरती हैं। हठ यौगिक चिकित्सा के अभ्यास द्वारा पूरे शरीर में सुधार, नियंत्रण और प्राण का सुचारू संचालन संभव है। वहीं पतंजलि ने मानसिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण और मन की शुद्धि पर जोर दिया है। स्वात्मराम के अनुसार, प्राण का सहज प्रवाह पूरे शरीर को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है। प्राण जब गलत मार्ग के माध्यम से बहने लगता है, इसके प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होने से मानसिक और शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। स्वात्मराम ने इसके लिए विशिष्ट योग अभ्यास (हठप्रदीपिका सं. 1–25) की सिफारिश की है। हालांकि हठयोग में यम और नियम पर जोर नहीं दिया गया है जैसा कि हम पतंजलि योग में देखते हैं, लेकिन हठ योग के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यम और नियम की अवधारणाओं के करीब लगते हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि जहाँ हठ योग प्राण को 'शरीर द्वारा मन का प्रेरण या संचालन' सिद्धांत पर जोर देता है, पतंजलि योग 'मन द्वारा शरीर का प्रेरण या संचालन' सिद्धांत पर कार्य करता है। हालांकि, यह सिर्फ प्रारंभिक चरण में है, फिर जैसे–जैसे हम योग के सूक्ष्म और अधिक अनुभवात्मक अभ्यासों की दिशा में आगे बढ़ते हैं, तो धीरे–धीरे यह अंतर धुँधला पड़ता जाता है। गौरतलब है कि लैचनिट और भोगल (2006) ने पाया कि एक ध्यान समूह ने अपने हठ योग अभ्यास के बाद अपने ध्यान अनुभवों में लंबी समयावधि में हठ योग समूह की तुलना में काफी अनुकूल परिवर्तन देखा। यह निष्कर्ष इस परिकल्पना का समर्थन करता है कि हठ योग अभ्यास ध्यानात्मक अनुभूतियों के लिए अनुकूल हैं।

कार्यकलाप 10

1. 'शरीर द्वारा मन का प्रेरण/संचालन' सिद्धांत तथा ' मन द्वारा शरीर का प्रेरण/संचालन' सिद्धांत के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

2.8 पतंजलि योग सूत्र में ध्यान संबंधी प्रक्रियाएँ

योग ध्यान (अर्थात् ध्यान) अवधान शब्द की तुलना में बहुत अधिक प्रभावी और अनुभवातीत है। ध्यान शब्द पतंजलि अष्टांग योग में सातवाँ अंग है, जिसकी परिभाषा है, ''चेतना (पतंजलि योग सूत्र 3:2) का अटूट और सतत प्रवाह।'' ध्यान के पहले धारणा है, जिसकी परिभाषा है, (पतंजलि योग सूत्र 3:1) ''शरीर के भीतर या शरीर के बाहर स्थानीकृत अवधान।'' हालांकि करंबेलकर (1987), शास्त्री (1960) और योग के कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि धारणा के दौरान अवधान शरीर के किसी हिस्से पर केंद्रित होना चाहिए न कि बाहर। पतंजलि योग सूत्र के अनुसार धारणा के पहले समापत्ति आती है, जो चार प्रकार की है; यथा वितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। जैसे–जैसे हम इन समापत्ति के पड़ाव एक के बाद एक पार करते हैं, हमारी चेतना तेजी से शुद्ध होती है। हालांकि ध्यान में चेतना काफी हद तक शुद्ध हो जाती है, तब ध्येता (ध्यानी), ध्येय (ध्यान की वस्तु) और ध्यान (ध्यान संबंधी प्रक्रिया) के बीच भेद नहीं रहता। तथापि समाधि में (पतंजलि योग सूत्र 3:3), वस्तु का केवल अर्थ आगे चमकता है। ध्यान की वस्तु से पूरी तरह से प्रभावित चेतना एक शून्य की स्थिति जैसी प्रतीत होती है।

ध्यान की अवस्था में हमारी चेतना सभी को शामिल कर लेती और इस तरह ज्ञान के बारे में हमारी बुनियादी जरूरत पूरी हो जाती है। यह स्थिति गैर–मूल्यांकनात्मक, गैर–प्रतिक्रियाशील बोध है, जो अनुभवातीत है। भगवद्गीता के अनुसार, इस तरह की योग स्थिति में सब दुख लुप्त हो जाता है और यौगिक आनंद (प्रसाद) प्राप्त होता है। साधक सभी मानसिक और शारीरिक समस्याओं से रहित हो जाता है और अंत में आत्म–साक्षात्कार एवं सही मनोवैज्ञानिक–शारीरिक संतुलित अवस्था प्राप्त करता है।

कार्यकलाप 11

1. ध्यान की सरलतम संभव परिभाषा क्या हो सकती है?

2. आप धारणा और ध्यान में कैसे अंतर स्पष्ट करेंगे? दोनों अवधारणाओं पर प्रकाश डालें।

2.9 सारांश

जैसा कि आप जानते हैं, समय–समय पर भारत के महान ऋषियों ने बिना सूक्ष्म और स्थूल की अनदेखी किए विज्ञान की आध्यात्मिक यात्रा के रूप में योग के विकास में योगदान किया, जो सूक्ष्मतम और परम को प्राप्त करने का एक सटीक साधन है। फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं है कि योग को एक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और विकसित अनुशासन सबसे पहले महर्षि पतंजलि ने बनाया तथा इसके बाद हठ योगियों द्वारा। इन विचारकों ने कई योग ग्रंथों की रचना की, जिनकी गणना आज भी योग साहित्य के सबसे प्रामाणिक स्रोत के रूप में होती है। साधकों (अभ्यासकर्ता) की इस तरह के साहित्य तक आसान पहुँच के लिए इस इकाई का लेखन किया गया है। इसमें योग विचारकों की इन विषय सामग्री के बारे में संदर्भ और स्पष्ट संकेत हैं। योग के शुरुआती अभ्यासकर्ता की सुविधा के लिए योग और इसकी कार्यप्रणाली का प्रामाणिक साहित्य तथा विभिन्न ग्रंथों को संक्षेप में समेटा गया है। इस प्रकार इस इकाई में पतंजलि द्वारा अपने 'योग सूत्र' में योगार्थ और साधन पाद में अष्टांग योग के रूप में वर्णित इसकी कार्यप्रणाली और क्रिया योग (तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान) को स्पष्ट किया गया है। क्रिया योग के महत्त्व को इस रूप में दर्शाया जा सकता है कि इससे सभी क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष व अभिनिवेश) के फलों को धीरे–धीरे दुर्बल किया जा सकता है, वे क्लेश जो मानव की सभी ज्ञात व अज्ञात सभी अस्तित्व संबंधी समस्याओं के मूल हैं।

इसके अलावा, इकाई में हठ यौगिक ग्रंथों, जैसे कि स्वात्मराम रचित हठप्रदीपिका के बारे में बात की गई है, के अनुसार राज योग और हठ योग एक ही अनुशासन के दो पहलू हैं। स्वात्मराम ने योग का अभ्यास अनुक्रम – आसन, प्राणायाम, मुद्रा और नादानुसंधान – दिया है। इसके बाद इसने घेरंड संहिता की बात की है, जो एक बहुत महत्त्वपूर्ण योगाभ्यास पुस्तिका मानी जाती है। इसमें 100 से अधिक योगाभ्यास दिए गए हैं। योग पर एक और ग्रंथ है "घटस्थ योग" जिसकी रचना महर्षि घेरंड ने की है, जो शुद्धि क्रिया पर जोर देते हैं। यह प्रणाली सप्तांग योग (क्रिया, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि) कहलाती है। इकाई आगे योग की दो प्रणालियों के बीच संपूरकता का पता लगाती है – हठ योग और पतंजलि योग के बीच। जहाँ पतंजलि मन के विचलन को रोकने और द्रष्टा भाव के लिए अभ्यास और वैराग्य की बात करते हैं, वहीं स्वात्माराम बताते हैं कि प्राण के प्रवाह पर नियंत्रण चित्त पर नियंत्रण है। इस प्रकार ये दोनों प्रणालियाँ एक–दूसरे पर निर्भर हैं।

मुख्य रूप से हम कह सकते हैं कि हठ योग जहाँ 'शरीर द्वारा मन का संचालन' सिद्धांत के माध्यम से प्राण की श्रृंखलाबद्धता पर जोर देता है, वहीं पतंजलि योग 'मन द्वारा शरीर की ओर' सिद्धांत पर काम करता है।

2.10 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

1. भारतीय चिंतन में योग की दो प्रणालियाँ कौन सी हैं?
2. हठ प्रदीपिका ग्रंथ किसने लिखा है?
3. योग सूत्र के किस पाद में पाँच क्लेश वर्णित हैं?
4. उचित पदानुक्रम में 5 क्लेश के नाम लिखें।
5. सप्तांग योग के घटक क्या हैं?

इकाई 3: योग और स्वास्थ्य

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 अधिगम उद्देश्य

3.3 रचनात्मक स्वास्थ्य हेतु योग की आवश्यकता

3.4 प्राचीन योग साहित्य के अनुसार रचनात्मक स्वास्थ्य में मन की भूमिका

3.5 स्वास्थ्य, चिकित्सा और रोग की संकल्पनाः यौगिक दृष्टिकोण

3.5.1 स्वास्थ्य और रोगों की संकल्पना

3.5.2 पतंजलि 'योगसूत्र' के अनुसार खराब स्वास्थ्य की उत्पत्ति

3.5.3 समग्र स्वास्थ्य के लिए त्रिगुण और पंचकोष की अवधारणाएँ

3.5.4 स्वास्थ्य और रोगों पर "लघुयोगवासिष्ठ"

3.6 खराब स्वास्थ्य के संभावित कारण

3.7 स्वस्थ रहने के यौगिक सिद्धांत (आहार, विहार, आचार, विचार)

3.8 स्वास्थ्य–प्रबंधन के लिए योग का समेकित दृष्टिकोण

3.8.1 मनोदैहिक स्वास्थ्य के लिए योग में संवेदी प्रतिपुष्टि की घटना

3.9 योग तथा यौगिक आहारीय विचार से तनाव प्रबंधन

3.9.1 योग द्वारा तनाव को कम करना

3.9.2 आहार के द्वारा प्राण संयमन (ऊर्जा की गतिकी का व्यवस्थित प्रवाह)

3.9.3 यौगिक आहार का तर्काधार

3.10 सारांश

3.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार स्वास्थ्य की अवधारणा और रोगों के कारणों के बारे में पढ़ने जा रहे हैं। हम यह देखेंगे कि शरीर के किसी भी भाग में अगर ऊर्जा का ह्रास होता है, तो वह भाग रोगग्रस्त हो जाता है। योग ऊर्जा के अवरुद्ध चैनलों को खोलने का एक बहुत शक्तिशाली तरीका है। एक बार जैसे ही चैनल खुल जाते हैं वैसे ही बीमारी होने के कारण समाप्त हो जाते हैं और हम स्वस्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि "रोकथाम इलाज से बेहतर" है। योग हमें रोग के कारणों को रोकने के बारे में भी सिखाता है ताकि किसी भी उपचारात्मक उपाय की कोई जरूरत न पड़े। यहाँ तक कि अगर हम स्वस्थ हैं तो भी अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने और खराब स्वास्थ्य के कारणों की रोकथाम के लिए पर्याप्त मात्रा में योग तकनीकें मौजूद हैं। यम, नियम, पंच–कर्म, प्राणायाम आदि सभी का उद्‌देश्य स्वास्थ्य को बनाए रखना है। अगर हमें लगता है कि हमारा भौतिक शरीर ही एकमात्र शरीर है, तो हम गलत हैं। प्रिय छात्रगण, योग के अनुसार, शरीर तीन हैं जो पाँच कोषों से मिलकर बने हैं। हर व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्य और अंततः मुक्ति के लिए प्रत्येक शरीर और प्रत्येक कोष की अच्छी देखभाल करनी चाहिए। योग ने स्वस्थ रहने के कुछ बुनियादी सिद्धांत भी निर्धारित किए हैं। हम इन पर भी विस्तार से चर्चा करेंगे और मुझे लगता है कि इस चर्चा द्वारा आपको पर्याप्त लाभ प्राप्त होगा। और अंत में, हम समग्र स्वास्थ्य और कल्याण की अवधारणा को समझने की कोशिश करेंगे। जैसा कि पहली इकाई में कहा गया है, अच्छे स्वास्थ्य के बिना, कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता – न तो भौतिक समृद्धि और न ही आध्यात्मिक प्रगति।

3.2 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- आधुनिक मनुष्य के लिए सकारात्मक स्वास्थ्य की आवश्यकता का औचित्य सिद्ध कर सकेंगे;
- योग साहित्य के अनुसार सकारात्मक स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- स्वास्थ्य, चिकित्सा और रोग की अवधारणा पर चिकित्सा और योग के परिप्रेक्ष्य में चर्चा कर सकेंगे;
- खराब सेहत के कारणों का पता लगा सकेंगे;
- विवेचना कर सकेंगे कि योगाभ्यास और आहार के माध्यम से तनाव प्रबंधन कैसे किया जा सकता है;
- यौगिक आहार का औचित्य सिद्ध कर सकेंगे;
- त्रिगुण की अवधारणा और स्वास्थ्य के साथ इसके संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे;
- समग्र स्वास्थ्य के लिए पंचकोष की अवधारणा पर चर्चा कर सकेंगे।

3.3 रचनात्मक स्वास्थ्य हेतु योग की आवश्यकता

तेजी से पनपती प्रतिस्पर्धा–आधारित आधुनिक जीवनशैली ने आज सदियों पुराने मानवीय मूल्यों का क्षरण कर दिया है, परिणामस्वरूप मानव जीवन शैली तनावग्रस्त हो गई है। जीवन की बदलती दैनंदिन भूमिकाओं के बीच इसने मनुष्य को मधुमेह और उच्च रक्तचाप जैसे मनोदैहिक विकारों की ओर धकेल दिया है।

आधुनिक शरीर–विज्ञान के अतिसरलीकारक सिद्धांतों पर आधारित आधुनिक उपचारात्मक उपाय, विशेष रूप से मानसिक और मनोदैहिक विकारों के मामले में, काफी हद तक अप्रभावी साबित हुए हैं। आधुनिक स्वास्थ्य संसाधन इस तरह के विकारों को केवल तात्कालिक राहत प्रदान कर सकते हैं। चूँकि ये संसाधन बाह्य–शारीरिक स्तर पर कार्य करते हैं, अतः मन की गहराई में पहुँचकर ये कारगर उपचार करने में अक्षम रहते हैं। मनुष्य क्योंकि एक जटिल मनोवैज्ञानिक प्रतिरक्षा–प्रणाली से लैस होता है, इसलिए उसके अस्तित्व से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने की दिशा में एक समग्र दृष्टिकोण की जरूरत होती है। इस स्थिति में पारंपरिक उपचारात्मक उपाय समग्र स्वास्थ्य की दिशा में महत्त्वपूर्ण और कारगर सिद्ध हो सकते हैं। योग एक लम्बे काल से जाँची–परखी व्यावहारिक विज्ञान पर आधारित एक प्राचीन विद्या है, जो वर्तमान स्थिति की गंभीरता की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है।

पारंपरिक योग में प्राण (शारीरिक गतिशीलता को सक्रिय बनाए रखने वाला एक महत्त्वपूर्ण घटक) पर नियंत्रण और संतुलन स्थापित करने के लिए अपने मौलिक सिद्धांत हैं, जिससे इसकी उपचार–प्रणाली आधुनिक विकारों पर कहीं अधिक प्रभावी सिद्ध होती है। इसके लिए यह प्राचीन यौगिक विद्या धन्यवाद की पात्र है।

योग पर स्वास्थ्य से संबंधी महत्त्वपूर्ण उद्घाटन स्वामी कुवलयानंद ने वर्ष 1924 के आरंभ मे ही कर दिया था : ***"...योग का भौतिक पक्ष एक मामूली सी बात है, मुख्य तो मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष है।"***

योग का स्वास्थ्य के प्रति सदैव एक समग्र दृष्टिकोण रहा है, जिसमें मन–शरीर–आत्मा तीनों का सामूहिक उपचार शामिल है। योग दर्शन और योगाभ्यासों पर यदि हम एक सरसरी नजर डालें तो पाएँगे कि योग और स्वास्थ्य से जुड़ी सब गतिविधियाँ पतंजलि योग या हठ योग से संबंधित हैं। आयुर्वेद भी मन और

शरीर की परस्पर निर्भरता पर जोर देता है: ''शरीर–विशेष का संबंध एक मन–विशेष के साथ होता है, इसके विपरीत, मन–विशेष का संबंध एक शरीर–विशेष के साथ होता है (चरक संहिता 4:36)।''

3.4 प्राचीन योग साहित्य के अनुसार सकारात्मक स्वास्थ्य में मन की भूमिका

हालाँकि मन को 'अशांतिपरक सत्ता' कहा गया है (भगवद् गीता 2:60, 67; पतंजलि योग सूत्र 1: 2, 5); लेकिन यौगिक लक्ष्य को पाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। एक अनमना व्यक्ति मन के अभाव में न तो ठीक से सुन या देख सकता है, न किसी प्रकार की उत्तेजना का अनुभव कर सकता है। इस प्रकार मन, विचारित वस्तुओं की विशेषताओं को ग्रहण करने का साधन है। यदि वस्तु सात्त्विक अर्थात् सुखद और ज्ञानमय) होती है, तो मन भी यही विशेषता हासिल करता है। इसलिए अगर हम मन की शांति चाहते हैं तो नेकी, करुणा और आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। ध्यान रखें, मन तो बस माध्यम है! यह न तो स्वस्थ और न ही अस्वस्थ हो सकता है। शांति की स्थिति में इसे बुद्धिपूर्वक रचनात्मक गतिविधियों में लगाया जा सकता है। इसी वजह से दुनिया भर में, सभी आध्यात्मिक अभ्यासों के दौरान मन को ऐसी वस्तुओं पर केंद्रित किया जाता है जो अनिवार्य रूप से शांतिपूर्ण, निर्मल और दिव्य होती हैं। केवल वही मन शांत रह सकता है जिसे शांतिपूर्ण और निर्मल वस्तुओं की ओर केंद्रित रखा जाता है। इसी प्रकार, मन को यदि उत्तेजना पैदा करनेवाली वस्तुओं (राजसिक) की ओर केंद्रित रखा जाता है तो वह उपद्रव करने लगता है; तथा गलत और बुराई पैदा करनेवाली वस्तुओं (तामसिक) की ओर केंद्रित रखा जाता है तो वह उदासीन, स्वार्थी और गुमराह हो जाता है। योग अनिवार्य रूप से सात्त्विक होने के कारण, हमारे मन को भावनात्मक रूप से स्थिर, ईमानदार और शांत बनाने में मदद करता है।

संक्षेप में कहें तो यदि हम सकारात्मक स्वास्थ्य की कामना करते हैं तो मन को हमें अंतर्गामी बनाकर पूरी तरह सात्त्विक वस्तुओं में लगाना होगा, ताकि समय के साथ–साथ हमारा मन स्वतः ही दिव्य (यौगिक) स्थिति को प्राप्त करके योगत्व को प्राप्त हो जाए। अच्छी बात यह है कि भले ही हम दिव्य स्थिति (यौगिक स्वास्थ्य) प्राप्त न कर पाएँ, मन की शांत स्थिति तो प्राप्त कर ही लेते हैं जो धीरे–धीरे हमें रचनात्मक स्वास्थ्य की ओर ले जाती है।

सभी भारतीय प्राचीन शास्त्रों में मन की अनिवार्य रूप से एक अस्थिर सत्त्व के रूप में कल्पना की गई है; जो स्वभाव से अस्थिर और क्रियाशील है, क्योंकि यह सांसारिक उत्तेजनाओं से प्रायः प्रभावित होता रहता है। इसके अलावा विभिन्न इंद्रियाँ हमेशा उपद्रव करती रहती हैं और शायद ही कभी शांत अवस्था में रहती हों। वस्तु की प्रकृति के आधार पर मन भी सक्रिय या परेशान हो उठता है। इसका जिससे जुड़ाव होता है, उसी के अनुरूप इंद्रियों में विक्षोभ उत्पन्न होता है। यौगिक तत्त्वमीमांसा के अनुसार, मन पर जितना विवेक का नियंत्रण रहता है, उससे संबद्ध मानसिक गतिविधियाँ उसी हद तक लाभकारी होती हैं। मेलजेक (1961) ने प्रमाणित किया है कि हमारी मूल्य–प्रणाली हमारी शारीरिक संवेदन धारणा को प्रभावित करती है। इस प्रकार, सेरेब्रल कॉर्टेक्स (प्रमस्तिष्क–प्रान्तस्था) मन पर गहरा नियंत्रण रख सकती है और साधक को शांति, संतुलन और स्थिरता की ओर अग्रसर कर सकती है। सभी यौगिक ग्रंथों में विवेक (बुद्धि) को विभेदकारी और निर्णायक सत्ता माना गया है और योगाभ्यास, मंत्र आदि के माध्यम से इसे शक्तिशाली बनाने की सिफारिश की गई है, ताकि यह मानसिक गतिविधियों पर वांछनीय नियंत्रण रख सके।

पतंजलि योग सूत्र के अनुसार चित्त (मन, अहंकार और बुद्धि) की पांच स्थितियाँ होती हैं; ये हैं– मूढ़ (अज्ञान से भरा), क्षिप्त (मानसिक तौर पर रोगी), विक्षिप्त (आंशिक मानसिक रोगी) एकाग्र (आत्मकेंद्रित) और निरुद्ध (दिव्य)। एकाग्र स्थिति सात्त्विक होने के कारण रचनात्मक स्वास्थ्य की प्रतीक है इसलिए यह यौगिक स्वास्थ्य की अग्रदूत मानी जाती है।

कार्यकलाप 12

1. सकारात्मक स्वास्थ्य को बनाए रखने में मन की क्या भूमिका है?

2. योग के बुनियादी सिद्धांतों के संदर्भ में स्वामी कुवलयानंद के निम्न कथन का समर्थन कीजिए : ''...योग का भौतिक पक्ष एक मामूली सी बात है, मुख्य तो मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष है।''

कार्यकलाप 13

1. स्वास्थ्य एवं रोग के संबंध में, यौगिक परिप्रेक्ष्य और आधुनिक चिकित्सा परिप्रेक्ष्य में अंतर स्पष्ट कीजिए। इस इकाई से अलग उचित उदाहरण दीजिए।

2. कृपया विस्तार से बताएं, ''योगाभ्यास के प्राचीन तरीके हमारे व्यक्तित्व विकास के लिए कहीं अधिक प्रभावी हैं।'' योग और शारीरिक व्यायाम के बीच अंतर बताते हुए अपने उत्तर का समर्थन करें।

3.5 स्वास्थ्य, चिकित्सा और रोग की अवधारणाएँ: यौगिक दृष्टिकोण

स्वास्थ्य का शब्दशः तात्पर्य है, किसी को शारीरिक रूप से फिर से सामान्य स्थिति में बहाल करना। इसके लिए यह पता लगाना आवश्यक होगा कि आखिर हम क्यों शारीरिक रूप से अस्वस्थ हो जाते हैं।

इकाई के इस भाग में हम स्पष्ट करेंगे कि वास्तव में स्वास्थ्य किसे कहते हैं और रोग और चिकित्सा शब्दों से क्या अभिप्रायः है। इन अवधारणाओं को समझने के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान तथा यौगिक दृष्टिकोण की तुलना भी करने का प्रयास करेंगे।

3.5.1 स्वास्थ्य और रोगों की संकल्पना

इकाई के इस भाग में हम स्वास्थ्य और रोग की मूल अवधारणा पर चर्चा करेंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने स्वास्थ्य की परिभाषा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से एक पूर्ण प्रसन्न अवस्था के तौर पर की है जो सभी प्रकार के रोगों से मुक्त होता हो। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य और खराब स्वास्थ्य दो अलग सत्ता नहीं हैं, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, बल्कि स्वास्थ्य को एक सदैव रहनेवाली कल्याणकारी स्थिति के तौर पर समझा जाना चाहिए।

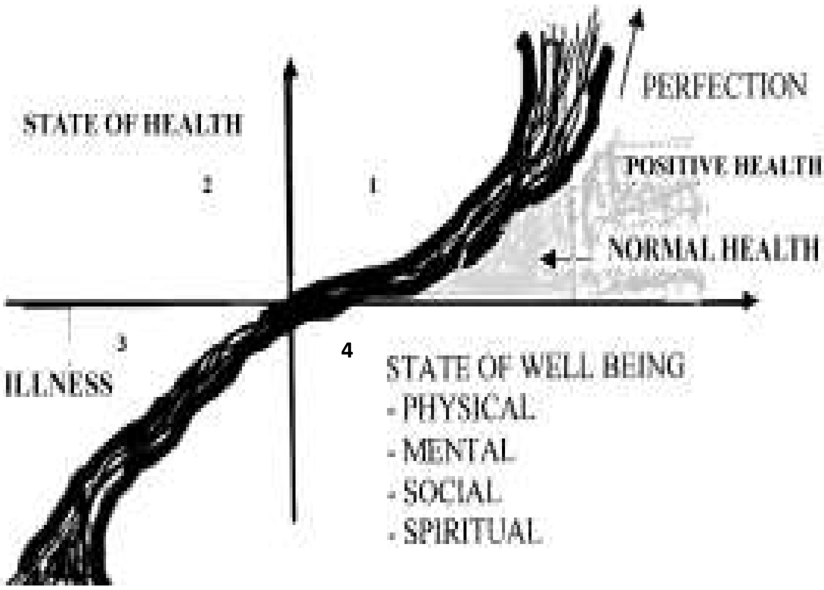

ऊपर दिए गए चित्र में तीसरा भाग 'खराब स्वास्थ्य का क्षेत्र' दिखा रहा है जिसे आम तौर पर हम 'बीमारी' के रूप में बताते हैं। इस स्थिति के नीचे, आदमी सहज कार्य करता है और जानवर जैसा होता है। पहला भाग 'सामान्य स्वास्थ्य' का क्षेत्र दर्शा रहा है जो सामान्य मनुष्य की स्थिति को दर्शाता है। जैसे–जैसे वह इस स्थिति से आगे बढ़ता है, अधिक ऊर्जावान् और स्वस्थ होता जाता है। यह सकारात्मक स्वास्थ्य के क्षेत्र के रूप में दिखाया गया है। इस स्थिति में सामान्य मनुष्य की भूख, प्यास, भय और योनेच्छा इत्यादि काफी कम हो जाते हैं और पूरी तरह नियंत्रण में रहते हैं। श्री अरबिंदो की अवधारणा के अनुसार, इस स्थिति में मनुष्य पांच इंद्रियों से परे एक अलग अलौकिक दुनिया में पहुँच जाता है और व्यक्ति के सामने चेतना की गहरी परतों को उजागर करता है और ज्ञान का यह विस्तार उसे देवत्व या पूर्णता की दिशा में ले जाता है। पूर्णता की ओर आगे ले जाने की इस प्रक्रिया में योग एक सचेतक के रूप में कार्य करता है और मनुष्य को पशु स्तर से उन्नत करके अंत में सर्वोच्च देवत्व तक पहुँचा देता है। यह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक घटकों के सर्वांगीण विकास के लिए एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। इस प्रकार, योग आदमी को स्वस्थ बनाने के साथ–साथ दिव्य ऊँचाइयों तक पहुँचाने की उपयोगी विधा है।

रोग की संकल्पना

योग पर सबसे अच्छे ग्रंथों में से एक योग–वासिष्ठ में योग के सार को बड़ी ही खूबसूरती से इस प्रकार चित्रित किया गया है : ***'मनःप्रशमनोपायः योग इत्यभिधीयते'*** – मन को शांत करने वाले उपाय को योग

कहा जाता है। यह उपाय एक सूक्ष्म एवं सुविचारित प्रक्रिया है, स्थूल एवं यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं जो हमारे मस्तिष्क में आने वाले विचारों को ही रोक दे।

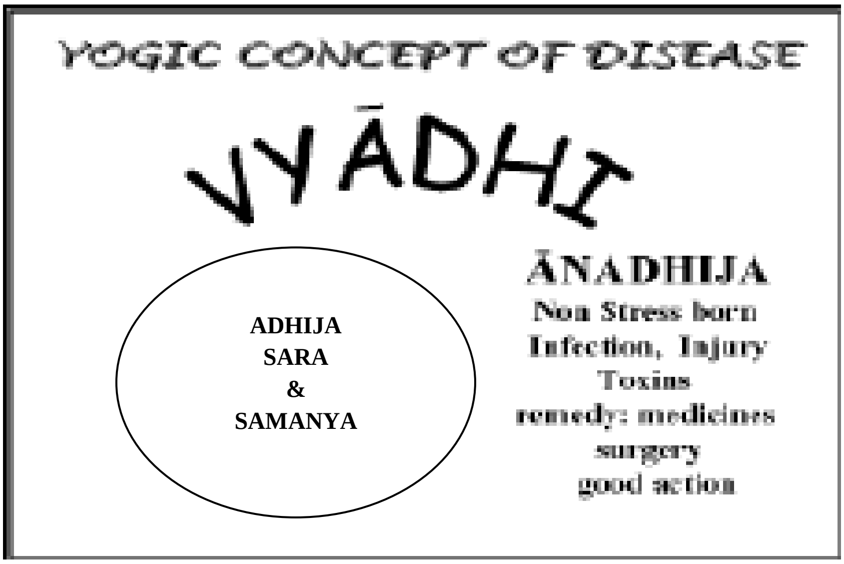

आनंदमय कोष में व्यक्ति अपने सही सामंजस्य और अंगीय संतुलन के साथ सर्वाधिक स्वस्थ रहता है। विज्ञानमय कोष में उपद्रव होते हैं लेकिन वे सही दिशा में प्रवाहित रहते हैं। योग ग्रंथों का कहना है कि यह मनोमय स्तर या कोष है, जहाँ से असंतुलन शुरू होते हैं। पसंद और नापसंद इस स्तर पर उभरते हैं। थीटा तरंगें हमारे कार्यों पर नियंत्रण शुरू कर देता है और वे अकसर गलत दिशा में होते हैं। मधुमेह का रोगी डॉक्टर की सलाह के खिलाफ जाकर गुलाब जामुन खाने को ललचाने लगता है। इस प्रकार खिलाफ जाने का सही कारण असंतुलन होता है। ये असंतुलन बढ़कर मानसिक व शारीरिक बीमारियों का रूप ले लेते हैं, जिन्हें क्रमशः आधि और व्याधि का नाम दिया गया है।

'आधि'– इस अवस्था में शारीरिक स्तर पर कोई लक्षण नहीं दिखता। लगातार बढ़ती इच्छाओं से पैदा होने वाला यह मानसिक विकार धीरे–धीरे पूरे शरीर को गिरफ्त में ले लेता है। अज्ञान (आनंद की वास्तविक स्थिति के बारे में अनभिज्ञता) की प्रधानता व्यक्ति को खराब खानपान, गलत जगह रहने, देर रात तक जागने, दुष्ट व बुरे लोगों के साथ रहने, चोट पहुंचाने आदि, विकार इत्यादि गलत कार्यों की ओर धकेलती है। ये शारीरिक रोगों को उत्पन्न करते हैं जिन्हें 'व्याधि' या सह–रोग कहते हैं।

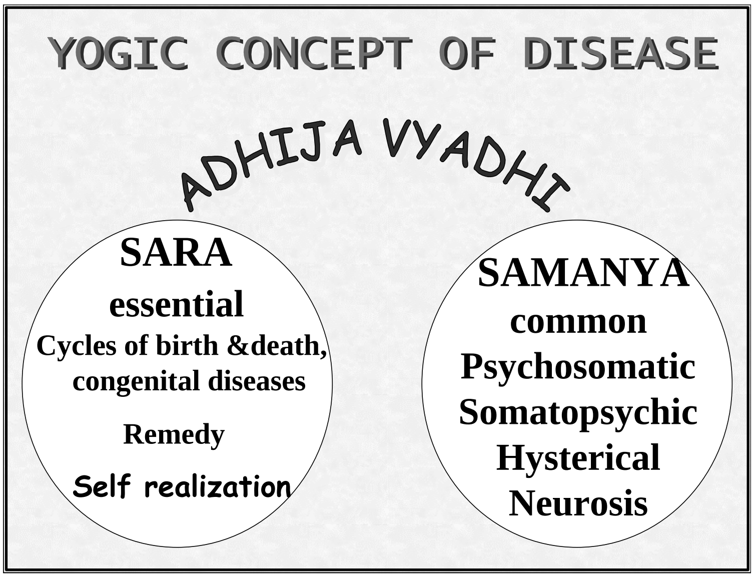

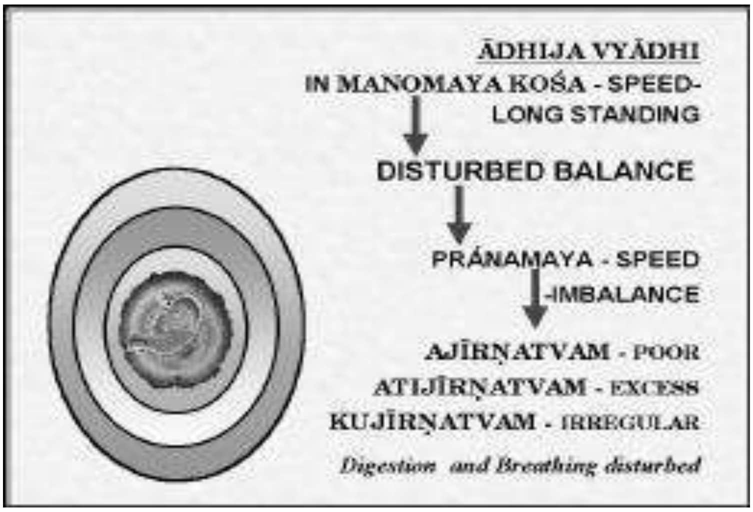

आधि (प्राथमिक रोग) दो प्रकार के होते है—सामान्य (साधारण) और सार (अवश्यम्भावी)। सामान्य रोग आकस्मिक रूप से होते हैं जबकि सार रोग पुनर्जन्म के लिए जिम्मेदार होते हैं। सामान्य रोग अकसर दुनियादारी के बीच पनपते हैं। इन्हें मानसिक रोग कहा जा सकता है। जब उपयुक्त तकनीक और सौहार्दपूर्ण वातावरण के साथ उनसे निपटा जाता है, तो साधारण प्रकार के रोग (आधि) गायब हो जाते हैं। साथ ही आधि से उत्पन्न शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। केवल विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष में रहकर ही भौतिक शरीर के जन्म के कारण रहे सूक्ष्म आधि रोगों को नष्ट किया जा सकता है। उस स्थिति में मनुष्य जन्म और मृत्यु के बंधन में नहीं बँधता। बीमारियों की दूसरी श्रेणी 'अनाधिज व्याधायः' है, जो मन द्वारा उत्पन्न नहीं होती। इनमें वास्तव में संक्रमण और संक्रामक रोग शामिल हैं। ग्रंथ कहते हैं कि अनाधिज व्याधियों को पारंपरिक दवाओं (आधुनिक चिकित्सा और आयुर्वेद की कीमोथेरेपी), मंत्रों (उनकी प्राकृतिक कंपन विशेषताओं के साथ) तथा अच्छे कार्यों से सँभाला जा सकता है। ये मन की पवित्रता लाने, प्राण के शरीर में स्वतंत्र रूप से बहने, आहार को उचित रूप से पचाने आदि में इत्यादि में सहयोगी होते हैं, जिससे रोग गायब हो जाते हैं।

मानसिक रोग

आधि के दो प्रकारों के अलावा सामान्य (साधारण) प्रकार के रोगों को आधुनिक मानसिक रोग कहा गया है। जब लोगों के बीच रहकर उत्तेजना के कारण मन में हलचल मचती है तो भौतिक शरीर भी इससे प्रभावित होता है। ये उत्तेजनाएं नाड़ियों में प्राण के प्रवाह में हिंसक उतार–चढ़ाव ला देते हैं। इससे प्राण लयहीन होकर गलत रास्तों पर उड़ान भरने लगता है। इस स्थिति में नाड़ियाँ देर तक स्थिरता बनाए नहीं रख सकतीं और काँपने लगती हैं। प्राण की इन बाधाओं तथा नाड़ियों की अस्थिरता के कारण भोजन ठीक से नहीं पचता। इससे कुजीर्णत्वम् (गलत पाचन), अतिजीर्णत्वम् (अधिक पाचन) तथा अजीर्णत्वम् (अपच) रोग हो जाते हैं। जब इस तरह अनुचित तरीके से पचा खाना शरीर में बैठ जाता है तो यह मानसिक व शारीरिक बीमारियों की वजह बनता है। योग इस तरह के मानसिक व शारीरिक रोगों के इलाज की कारगर विधि है।

3.5.2 पतंजलि "योगसूत्र" के अनुसार खराब स्वास्थ्य की उत्पत्ति

आधुनिक चिकित्सा और पतंजलि योग सूत्र में रोगों की उत्पत्ति के बारे में उल्लेखनीय समानताएँ हैं। इनके अनुसार, कोई भी रोग या तो वंशानुगत जीवन से आता है या बाहरी दुनिया के संपर्क में आने से। यही कारण है कि इन दोनों कारकों में से अकेले कोई भी विकार उत्पन्न नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, भले ही माता–पिता दोनों ही वंशानुगत रोगों से पीड़ित हों, फिर भी वे मानसिक व शारीरिक विकार पैदा नहीं कर सकते, जब तक कि बाहरी प्रभाव के संपर्क में नहीं आते। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति की यदि वंशानुगत विशेषताएँ मजबूत होती हैं तो वह बाहरी विकारों से प्रभावित होने के बावजूद लंबे समय तक उनसे बचा रह सकता है। मानव इतिहास में महापुरुषों ने जीवन में बड़े–बड़े कष्ट झेले हैं लेकिन कभी हार नहीं मानी, आत्मसमर्पण नहीं किया। पतंजलि तत्त्वमीमांसा के अनुसार, क्लेश स्वभावतः वंशानुगत होते हैं, जबकि जीवन में महत्त्वपूर्ण घटनाओं के लिए परिवेश जिम्मेदार माना जाता है। चित्तवृत्ति एक विशिष्ट मानसिक क्रिया है जो पूर्व वर्णित दोनों कारकों के समन्वय से उत्पन्न होती है।

क्लेश (वेदनाओं) को सामान्य तौर पर सभी विद्यमान विकारों का मूल कारण माना जाता है और विशेष रूप में मनोदैहिक विकारों के लिए। क्लेश आंतरिक वातावरण (मानसिक व शारीरिक शक्तियों और कमजोरियों) तथा बाहरी वातावरण (प्राप्त मानसिक ग्रंथियों, पूर्वाग्रहों और स्वाभाविक मतिभ्रंश/विपथ–गमन) से संपर्क करके चित्तवृत्ति का निर्माण करता है। यदि कोई व्यक्ति इन चित्तवृत्तियों के साथ अपना तादात्मय स्थापित कर लेता है, तो तनाव का मन पर प्रभाव होने लग जाता है। अगर कोई उपचार नहीं किया जाए तो व्यक्ति तनाव के अगले चरण अर्थात् शारीरिक विकार वाली अवस्था में चला जाता है। यहाँ नव विकसित मनोदैहिक विकारों के स्थायी प्रभाव के बारे में बताया गया है। यदि उपचारात्मक पग नहीं लिए जाते तो तनाव का अगला चरण अर्थात् दैहिक चरण आरंभ हो जाता है। जल्दी इस पर नियंत्रण नहीं किया जाए तो यह संस्कार रूप में घर कर लेता है। इस प्रकार, तनाव जैविक चरण में पहुँच जाता है। इसलिए तनावजन्य रोगों की उपचार विधि अपनाई जाती है, जिसमें शामिल हैं: (1) रचनात्मक जीवन शैली, परिवेश में परिवर्तन, (2) क्रिया योग की तरह के योगाभ्यास करना (पतंजलि योग सूत्र 2:1) तथा ओंकार जप आदि। नियमित रूप से योगाभ्यास से मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकार की व्याधियों में कारगर असर देखने को मिलता है तथा तनाव जैसे विकारों से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है।

3.5.3 समग्र स्वास्थ्य के लिए त्रिगुण और पंचकोष की अवधारणाएं

- ***त्रिगुण की संकल्पना***

  मनुष्य ने बाधारहित पूर्ण स्वास्थ्य और अजेय व्यक्तित्व पाने के लिए हमेशा कड़ा परिश्रम किया है। व्यक्तित्व के मामले में मनोविज्ञान में विखण्डित दृष्टिकोण रहा है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास के लिए आधार के रूप में बचपन के अनुभवों पर जोर दिया। एडलर, फ्रॉम और हेनरी व्यक्तित्व के लिए सामाजिक निर्धारकों को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। एरिक्सन और आलपोर्ट ने कुछ क्षमताओं को प्राप्त करने की वकालत की है। मैस्लो मूल आवश्यकताओं पर जोर देते हैं और रोजर्स व्यक्ति के व्यक्तित्व की बात करते हैं। योग का व्यक्तित्व विकास के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण है।

सांख्यदर्शन जिसे प्रायः सैद्धान्तिक योग के रूप में जाना जाता है, में तीन प्रकार के शरीरों की कल्पना की गई है, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। योग के अंतर्गत यह माना गया है कि जो कुछ स्थूल शरीर को प्रभावित करता है, वह सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर दोनों को भी 'प्रभावित' करता है। इसलिए संतुलित और सार्थक भौतिक जीवन से व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में पहुंचता है। अपने व्यक्तित्व की संरचना के अनुसार मनुष्य अपने अनुरूप योग–विधि अपना सकता है। राजसिक व्यक्ति कर्मयोग को अपना सकता है, सात्विक व्यक्ति भक्ति योग को और तामसिक व्यक्ति कर्म योग और ज्ञान योग को अपना सकता है। व्यक्ति तमस गुण के साथ प्रारम्भ उसे रजस गुण में परिवर्तित कर सकता है तथा उसके बाद सत्व गुण में बदलकर अन्ततः गुणातीत/निरूद्ध अवस्था में पहुंचने से पहले सभी गुणों से परे हो जाता है।"

डॉ. इन्द्रसेन (1960) ने कहा है "व्यक्तित्व की भारतीय अवधारणा में इसकी सामान्य संरचना का विश्लेषण किया गया है जिसके अंतर्गत इसके विकास की स्थितियों की खोज और उन्हें व्यवस्थित रूप से तैयार करने, तथा इसके उच्चतम विकास की गुणवत्ता व विशेषताओं का वर्णन मिलता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो यही है कि आदमी क्या है, वह क्या बन सकता है और, वह ऐसा कैसे बन सकता है।

तैत्तिरीय आरण्यक में शरीर के पंचकोषों की अवधारणा हैः (i) अन्नमय कोष (स्थूल शरीर कोष), (ii) प्राणमय कोष (क्रियात्मक शरीर कोष), (iii) मनोमय कोष (भावनात्मक कोष), (iv) विज्ञानमय कोष (बौद्धिक कोष) तथा आनन्दमय कोष (परमानन्द कोष)। इन पांच कोषों का सह–अस्तित्व सभी के पूर्ण सामंजस्य के साथ होता है।

तैत्तिरीय अरण्यक के अनुसार व्यक्ति को उचित अभ्यासों द्वारा इन सभी कोषों की ओर ध्यान देना होता है। पंचकोष की अवधारणा के अनुसार मनुष्य एक सम्पूर्ण सत्ता है, जिसमें सभी पंचकोष एक स्वस्थ मनुष्य में पूर्ण सामंजस्य बनाए रखते हैं। सभी कोषों के संवर्धन के लिए उपयुक्त योगाभ्यास अपनाने की आवश्यकता होती है। अष्टांग योग का अभ्यास समग्रता की भावना से किया जाए, तो सभी कोषों का संवर्धन समग्र रूप से होने लगता है, और इस प्रक्रिया में हमें ऐसा व्यक्तित्व मिलता है, जो स्वयं में पूर्ण होता है।

केवल चिकित्सीय व्यवस्था के मामले में ही ऐसा होता है कि एक या अधिक विशेष कोषों में हम गड़बड़ी महसूस करते हैं तो अलग–अलग कोष के लिए संस्तुत प्रचलित अभ्यास को ही किया जाता है। उदाहण के लिए – अन्नमय कोष में व्यवधान होने से हम आसन युक्ताहार (उचित और संतुलित सात्त्विक आहार) आदि संस्तुत कर सकते हैं, प्राणमय कोष में व्यवधान होने पर प्राणायाम और अन्य ऐसे ही अभ्यासों को संस्तुत किया जाता है, मनोमय कोष की समस्या के उपचार के लिए हैं – प्रत्याहार और प्रयोगात्मक योग क्रियाएं, विज्ञानमय कोष में व्यवधान होने से धारणा और ध्यान की क्रियाएं संस्तुत की जा सकती हैं तथा आनन्दमय कोष के लिए ध्यान संबंधी तकनीकें जो भावातीत/अनुभवातीत प्रकार की होती है, इनका अभ्यास किया जा सकता है।

- ***पंचकोष की अवधारणा और रचनात्मक स्वास्थ्य***

तैत्तिरीय उपनिषद् में पचंकोष की अवधारणा और उनके विकास का वर्णन है। कोष का मतलब अस्तित्व की परतों से है। तैत्तिरीयोपनिषद् की आनन्दवल्ली में ब्रह्मानन्द को पाँच परतों से युक्त माना गया है। इसमें कहा गया है कि अन्नमय कोष से प्रारंभ होकर आनन्दमय कोष तक पहुंचकर हमारा अस्तित्व 5 परतों अथवा आवरणों से युक्त हो जाता है (देखें चित्र 3.1)।

चित्र 3.1: *पंचकोष*

जिस स्थूल शरीर को हम देखते हैं, वह अन्नमय कोष है। प्राणिक ऊर्जा से बना सूक्ष्म शरीर प्राणमय कोष होता है, जो जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। तीसरा कोष मनोमय कोष या मानसिक आवरण है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य की भावनाएं और आवेग विद्यमान होते हैं। चौथा विज्ञानमय कोष है। बौद्धिक विकास की यह अंतिम अवस्था है जहां व्यक्ति सहज रूप से विवेकी बन जाता है। उसे किसी चीज (बात) को सिद्ध करने के लिए आनुभविक साक्ष्य या तर्क का सहारा नहीं लेना पड़ता अपितु वह सहज रूप में विवेक के द्वारा निर्णय करता है और अच्छे और बुरे में अन्तर कर देता है। अंतिम परत आनंदमय कोष है। इसकी विशेषताएं हैं: रचनात्मकता, प्रसन्नता और आनन्द। अब हम इन कोषों को विस्तार से समझते हैं।

1) अन्नमय कोषः आहार आवरण

अन्न का शाब्दिक अर्थ भोजन अथवा आहार से है। हालांकि अस्तित्व के निम्नतम स्तर अन्नमय कोष का तात्पर्य भौतिक अस्तित्व के जगत से है। जो कुछ भी हम अपनी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) के माध्यम से अनुभव करते हैं, वह भौतिक परत का भाग होता है।

भौतिक परत स्वयं में पूर्ण होती है। भौतिक संसार में होने के कारण वह आहार का उपयोग करती है। अन्ततः भौतिक अस्तित्व पदार्थ में ही विलीन हो जाता है। भौतिक शरीर हमारे अस्तित्व का सबसे बाहरी हिस्सा, जिसे अन्नमय कोष अथवा आहार आवरण के रूप में कहा गया है। यह भोजन का सार पिता से ग्रहण करके उत्पन्न होता है और मां द्वारा लिए गए भोजन से गर्भ में पोषित होता है। आहार का उपयोग करते रहने से इसका अस्तित्व अनवरत बना रहता है और अन्त में मृत्यु के पश्चात वापस जाकर पृथ्वी को उर्वर बनाने में योगदान देकर आहार बन जाता है। भौतिक संरचना का पदार्थ आहार से उत्पन्न होकर आहार में जीवित रहकर और पुनः आहार बन जाना स्वाभाविक ही आहार आवरण ही सबसे उत्तम नाम है। जो भोजन हम ग्रहण करते हैं वह मांसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, नाड़ियों, रक्त और अस्थियों में परिवर्तित हो जाता है। यदि उचित अभ्यास के साथ उपयुक्त आहार या भोजन दिया जाता है तो अन्नमय कोष भलीभांति विकसित होता है। स्वस्थ विकास के लक्षण हैं, स्वास्थ्य, गतिशीलता, क्षमता और सहनशीलता। इन गुणों वाला व्यक्ति सभी प्रकार के कौशल आसानी से प्राप्त कर हाथ और आंख का उत्तम समन्वय कर लेता है। ग्रहण किया गया आहार विभिन्न पोषक तत्वों में परिवर्तित होकर हमें शारीरिक रूप से विकसित करता है। नित्य उपयुक्त आहार लेने की आदत, व्यायाम, खेलकूद, दौड़ना, टहलने और आसन आदि क्रियाओं के करने से अन्नमय कोष को विकसित किया जा सकता है।

2) प्राणमय कोषः जैव अथवा प्राणाधार आवरण

पंच प्राण आयुर्वेद में वर्णित पांच शारीरिक प्रणालियों के सदृश्य हैं, जो जैव या प्राणाधार कोष के रूप में माना जाता है। जो क्रियाएं शरीर को जीवित रखने में सहायक होती हैः वे हमारे श्वसन क्रिया की वायु के कारण होती हैं। प्राणियों में जब तक यह प्रमुख सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत होता रहता है, तब तक जीवन चलता रहता है। प्राणायाम और श्वसन सम्बन्धी अभ्यासों से प्राणमय कोष की गुणवत्ता में सुधार आता है। इसीलिए इसे प्राणाधार कोष कहा जाता है। पांच प्राण, जिनसे मिलकर यह कोष बनता है, निम्नलिखित है : –

i) प्राण (ज्ञान के संकाय से संबंधित), यह पांच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाहरी वातावरण से प्राप्त पांच प्रकार की संवेदनाओं के बोध को नियंत्रित करता है।

ii) अपान (उत्सर्जन का संकाय) शरीर से बाहर निकले हुए अपशिष्ट या जिन्हें शरीर स्वीकार नहीं करता जैसे पसीना, मूत्र, मल आदि अपान की अभिव्यक्ति है।

iii) समान (पाचन संबंधी संकाय) : यह आमाशय में एकत्र भोजन को पचाने का कार्य करता है।

iv) व्यान (परिसंचरण संबंधी संकाय): वह शक्ति जिससे पचे हुए भोजन से पोषक तत्वों को रक्त संचार द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक उपयुक्त रूप से पहुंचाया जाता है।

v) उदान (सोच–विचार से संबंधित संकाय): व्यक्ति में उसके विचारों को वर्तमान स्तर से उठाने की क्षमता जिससे किसी नए सिद्धान्त अथवा विचार–आत्म–शिक्षा की क्षमता की कल्पना करना या उसकी सराहना की जा सके। व्यक्ति की वृद्धावस्था में ये पांचों प्राण धीरे–धीरे कमजोर होने लगते हैं। यह जैव आवरण अन्नमय कोष को नियंत्रित और व्यवस्थित करता है। जब प्राण उपयुक्त रूप से कार्य नहीं करते हैं, तो भौतिक शरीर प्रभावित होता है। प्राणमय कोष के स्वस्थ विकास के लक्षण हैंः उत्साह, आवाज का कारगर उपयोग, शरीर की लचक, दृढ़ता, नेतृत्व के गुण, अनुशासन, ईमानदारी और उदारता।

3) मनोमय कोषः मानसिक आवरण

मनोमय कोष मानस अथवा मन से निर्मित है। इसमें सोच–विचार, भावना और इच्छा शामिल हैं। मन पांच ज्ञानेन्द्रियों के साथ स्वाद(जीभ), घ्राण(नाक), दृष्टि (आंख), श्रवण (कान) और स्पर्श (त्वचा) से मनोमय कोष, अथवा मन का आवरण बना है। मनुष्य का बंधन मन के कारण होता है, जिसमें सभी संवेदी परिणाम प्राप्त होते हैं, इसी में अच्छे और बुरे की पहचान होती है तथा अच्छे की इच्छा उत्पन्न होती है। यह कोष पहले वाले दोनों कोषों से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है, और यह उनको नियंत्रित करता है। मनोमय कोष को इससे ऊपर के दो कोषों (विज्ञानमय और आनन्दमय कोष) द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इस प्रकार यह मानव अस्तित्व के केन्द्र के रूप में स्थित है। इस कोष के भीतर उपचार के कई तौर–तरीके विद्यमान होते हैं जैसे सुगंध, संगीत, रंग, छद्म औषध चिकित्सा, आदि। अधिक कारगर होम्योपैथिक दवाएं भी इसे प्रभावित करती हैं। यह मन प्राणमय कोष या प्राणवायु आवरण को भी नियंत्रित करता है। उदाहरण के लिए, जब मन किसी सदमें से परेशान होता है तो इससे प्राण और शरीर की क्रियाएं प्रभावित हो जाती हैं। मन ज्ञानेन्द्रियों के प्रभाव को व्यक्त करता है। इसके भीतर अतीत की इच्छा और बुरी स्मृतियां संकलित होती हैं। नियमित प्रार्थना, और संकल्प करके मन की शक्ति में वृद्धि करना संभव है। मन, बुद्धि और शरीर में गहरा संबंध होता है। मनोमय कोष के विकास के लिए अच्छे साहित्य का अध्ययन उपयोगी होता है जैसे कविताएं, उपन्यास, निबंध और लेख आदि।

4) विज्ञानमय कोषः बौद्धिक आवरण

विज्ञानमय कोष विज्ञान अथवा बुद्धि से निर्मित है, जिसके अन्तर्गत अच्छे व बुरे में अन्तर का निर्धारण होता है। इसकी रचना अधिक बौद्धिक प्रक्रियाओं से हुई है तथा धारणा संबंधी अंगों से सम्बद्ध होता है। निम्नलिखित कारणों से यह ज्ञानयुक्त आवरण स्वयं में सर्वोपरि नहीं हो सकता, यह

परिवर्तनशील होता है और अनवरत स्थिर नहीं रहता तथा एक संज्ञाहीन और सीमित वस्तु है, यह हर समय मौजूद नहीं होता।

मन (मानस) तो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाहरी संवेदनाओं को प्राप्त करता है और कर्मोन्द्रियों को सूचित कर प्रेरित करता है। यद्यपि पांच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त संवेदनाएं एक दूसरे से अलग तरह की होती हैं, उनका एक समेकित अनुभव यह होता है कि उन्हें मन को प्रेषित किया जाता है। बुद्धि विवेचक और कुशाग्र प्रक्रिया है, जिसमें प्राप्त संवेदनाओं की परख और तद्नुसार निर्णय होता है। यह मन को अपने निर्णय के विषय में सूचित भी कर देती है कि किस प्रकार की अनुक्रिया की जानी है। मन स्मृति के आधार पर अपने अनुभवों को सुख अथवा विषाद से जोड़ देता है। बुद्धि हालांकि अपनी सोचने की क्षमता से एक तर्क संगत निर्णय लेती है जो भले ही मन को अच्छा न लगता हो किन्तु यह अन्ततः व्यक्ति के लिए लाभदायक हो सकता है। मन सभी स्मृतियों और ज्ञान का भंडार होता है। अनुभव का यह भंडार मनुष्य के क्रियाकलाप में मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। मन को आवेगों के अधिष्ठान के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। और बुद्धि उन क्षेत्रों की परख करने के लिए है, जिन्हें वे संचालित करते हैं। मन में केवल 'ज्ञात स्थानों' की यात्रा करने की क्षमता होती है किन्तु बुद्धि ज्ञान स्थलों में रहने के बावजूद नई खोजों की जांच करके उन पर मनन करने और समझने के लिए ज्ञात स्थलों में प्रवेश कर सकती है।

5) आनन्दमय कोषः परमानन्दमय आवरण

यह परमानन्द की स्थिति मानी जाती है, क्योंकि हम जाग्रत और स्वप्न की किसी भी अवस्था में होते हैं, तो हम पूर्व अनुभव के आधार पर ऐसी स्थिति में असीम शान्ति और परमानन्द का अनुभव करते हैं। आनन्दमय आवरण बौद्धिक आवरण को नियंत्रित करता है। जब अन्य सभी कोष पूर्ण विकसित होते हैं तो हमें अपनी अन्तरात्मा और बाह्यजगत् में समन्वय की अनुभूति होती है। इस सामंजस्य से हमें खुशी व आनन्द की अनुभूति होती है। ये पांचों कोष व्यक्ति द्वारा पहने हुए वस्त्रों की परत जैसे होते हैं, जो पहनने वाले व्यक्ति से एकदम अलग होते हैं। इसीलिए आत्मा अथवा वास्तविक अस्तित्व बाहरी अन्य पांचों परतों से पूर्ण रूप से अलग होता हैं।

कार्यकलाप 14

1. कोष की परिभाषा दीजिए।

2. कोष कितने होते हैं? उनके नाम बताइए।

3.5.4 स्वास्थ्य और रोगों से संबंधित लघु योगवासिष्ठ

हठ योग संबंधी ग्रन्थ 'लघु योग वासिष्ठ' के अनुसार जब मनोमय कोष (मन) बाधित होता है तो प्राणमय कोष भी बाधित होता है। इसके फलस्वरूप जिन तन्त्रिकाओं से प्राण का प्रवाह होता है, वे तंत्रिकाएं भी बाधित हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्राण और अधिक बाधित हो जाता है। ऐसी स्थिति में लिया गया भोजन 'जहर' बन जाता है, क्योंकि दबाव के कारण विभिन्न पाचक रस क्षीण हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में तीन प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जैसे – अपच, कुपाचन और अति पाचन। इसके लिए संस्तुत उपचार हैं– संतों का सान्निध्य, मंत्रों का उच्चारण, रात को अधिक देर तक न जगना, इसके अतिरिक्त मन को शांत रखने और प्राण को इसकी सामान्य स्थिति में लाने के अन्य उपाय भी हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक के *"पंचकोष विवेक"* में मानव रचना की एक समग्र दृष्टि वर्णित है, जिसमें शरीर का अन्तर–आश्रय, प्राण, मन, बुद्धि तथा आन्तरिक आनन्द का चित्रण है। व्यक्ति को आत्म बोध प्राप्त करने से पहले कुछ योग क्रियाओं के माध्यम से इन सभी स्तरों को पार करना होता है।

3.6 खराब स्वास्थ्य के संभावित कारण

योग के अनुसार बीमारी या खराब स्वास्थ्य का कारण सामान्य रूप से मन, शरीर और वाणी के स्तर पर अशुद्धियाँ मानी गई हैं। आपकी अपनी ही बात आपमें तथा आपके लिए आस–पास के लोगों में संकट उत्पन्न कर सकती है। इस संकट या असुविधा को एक बीमारी के रूप में ही लिया जाना चाहिए। शरीर, मन और भावना एक त्रिपादिका (तिपाई) की तरह है। यदि एक पहलू ठीक तरह से कार्य नहीं कर रहा होता है तो हमारा जीवन असंतुलित हो जाएगा और स्वास्थ्य खराब होता रहेगा। योग (आयुर्वेद का एक घटक) एक ऐसा सूत्र है जो तीनों घटकों (शरीर, मन और भावना) को जोड़कर सद्भाव या सामंजस्य उत्पन्न करते हैं। यह सामंजस्य ही जीवन का आधार होता है।

पतंजलि योग सूत्र से पता लगता है कि खराब स्वास्थ्य का मूल कारण मुख्यतया मानसिक होता है। सूत्र (प.यो.सू.–1:31) में बताया गया है कि ***दुःख–दौर्मनस्य–अंगमेजयत्व–श्वास–प्रश्वासविक्षेपसहभुवः*** इसका अर्थ है दर्द और दुःख, मानसिक संताप, शरीर के अंगों में विकार आना तथा श्वास–प्रश्वास में व्यवधान आना, ये सब चित्त में व्यवधान होने के कारण हैं। चित्त की ये बाधाएं आन्तरिक होती हैं और इनमें से बहुत सी तो ऐसी हैं जिनका आभास आसानी से नहीं होता है किन्तु उनके होने का बोध बाहरी लक्षणों से होता है। इस सूत्र में इन लक्षणों को बताया गया है। इनमें से एक या एक से अधिक लक्षण हमेशा रहेंगे। जब कोई चित्त विक्षेप होता है, तभी ऐसे विकार होते हैं और इनकी गंभीरता का अनुमान इन बाहरी लक्षणों की गतिविधि की तीव्रता से लगाया जाता है। क्योंकि ये सहभाव (सहवर्ती) चित्त–विक्षेप के कारण होते हैं।

पहले वाले विकारों के नियंत्रण हेतु कुछ तकनीकें हैं, जो बाद वाले विकारों को दूर करने में भी सहायक होंगी। प्रथम दो सहभाव मानसिक होते हैं, मगर उनका प्रभाव शरीर पर भी होता है, इसलिए इनके माध्यम से गुप्त और सूक्ष्म चित्त–विक्षेप का पता आसानी से लग जाता है। बाद वाली दो बाधाएं शरीर में प्रत्यक्ष परिवर्तन ला देती हैं और आसानी से दिखाई देती हैं। दुःख का तात्पर्य शारीरिक दर्द और मानसिक अवसाद दोनों से है। शरीर के ऐसे दर्द या असुविधा का पता आसानी से लगाया जा सकता है, क्योंकि ऐसी अवस्था व्यक्ति बार–बार अपनी मुद्राएं या भंगिमाएं बदलता रहता है।

व्याधि (शारीरिक रोग): महर्षि पतंजलि (योग दर्शन 1:30) के अनुसार योग (समाधि) में ध्यानस्थ होने में नौ बाधाओं में से व्याधि को एक बाधा माना गया है। पतंजलि प्रत्यक्ष लक्षणों का विश्लेषण भी करते हैं, जैसे दुःख (मानसिक या शारीरिक दर्द), दौर्मनस्य (उदासी या विषाद), अंगमेजयत्व (सिहरन, कम्पन्न) तथा श्वास–प्रश्वास (श्वास सम्बन्धी अनियमितताएं) को मानसिक बाधाओं का सहवर्ती भाव माना गया है (योगसूत्रः 1:31)। कैवल्यधाम के एक प्रख्यात योग विशेषज्ञ घराटे के अनुसार ये अन्तराय विघटन (व्याधि) के मुख्य कारणों में से हैं। उन्होंने समाधि को स्वास्थ्य की आदर्श अवस्था के रूप में वर्णित किया है, जो क्लेशों और अन्तरयों के कारण उत्पन्न चित्तविक्षेपों (मन में बाधाएं) द्वारा बाधित हो जाती है। उन्होंने आगे कहा है कि बन्धन, व मुक्ति और प्रसन्नता व अप्रसन्नता का कारण मन होता है। उनके अनुसार योग का उद्देश्य इन कारकों (***क्लेशतनुकरणम्***) के प्रभाव को समाप्त या कम करना तथा समेकन (***समाधि भवनम्***) की स्थिति को संवर्धित करना है। महर्षि पतंजलि हमें मन को शान्त करने के लिए श्वसन धीमी गति और गहरे प्रवाह पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह देते हैं, जिससे मानसिक असंतुलन को नियंत्रित किया जा सकता है (***प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य*** – योगसूत्र 1:34)। उन्होंने स्थिरता और प्रशांति प्राप्त करने के लिए एक ज्योतिर्मय (दीप्ति) दर्द रहित आन्तरिक स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह दी है (***विशोका वा ज्योतिष्मती*** – योगसूत्र 1:36)।

पतंजलि ने तनाव आधारित विकारों के प्राथमिक कारण को भी पंचक्लेश (मनोवैज्ञानिक वेदनाएं) की अवधारणा के माध्यम से समझाया है। ये अविद्या (अन्तिम सत्य वास्तविकता के प्रति अनभिज्ञता, जिससे शरीर से संबंधी तथ्यों की पहचान होती है), अस्मिता (आत्मा का अवास्तविक भाव), राग–द्वेष (लत व घृणा), अभिनिवेश (मौत के डर से जीवन के प्रति मोह), (***अविद्या–अस्मिता–रागद्वेषाभिनिवेशः क्लेशाः*** – योगसूत्र II:3)। मूल कारण के होने से अविद्या समय–समय पर अन्य क्लेशों को भी विभिन्न रूपों में प्रकट करती है। वे दर्द और कष्ट की करणीयता के मामले में निष्क्रिय, क्षीण, प्रत्यक्ष अथवा प्रभावी हो सकते हैं। (***अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्*** – योगसूत्र II:4)।

रोग के यौगिक दृष्टिकोण से यह देखा जा सकता है कि मनोदैहिक, तनाव से संबंधित विकार चार अलग–अलग चरणों के माध्यम से बढ़ते रहते हैं। इन्हें इस रूप में समझा जा सकता हैः

- **मानसिक चरणः** इस चरण की विशेषता है मध्यम परंतु स्थाई मनोवैज्ञानिक तथा व्यवहार सबंधी तनाव जनित लक्षण। जैसे चिड़चिड़ापन, नींद का उखड़ना इत्यादि। इस चरण को समान रूप से विज्ञानमय और मनोमय कोषों से सम्बद्ध किया जा सकता है। इस चरण में उपचार के रूप में योग बहुत कारगर होता है।

- **मनोदैहिक चरणः** यदि तनाव जारी रहता है तो लक्षण बढ़ जाते हैं, और साथ ही शरीर में भी सामान्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं जैसे सामयिक उच्च रक्तचाप और सिहरन। यह चरण मनोमय और प्राणमय कोष से सह–संबंधित हो सकता है। इस चरण में उपचार के रूप में योग बहुत कारगर होता है।

- **दैहिक चरणः** इस चरण को अंगों, विशेष रूप से लक्षित अथवा संबंधित अंग, की क्रियाओं में बाधा होने के रूप में चिह्नित किया गया है। इस स्थिति में व्यक्ति रोग ग्रस्त अवस्था की पहचान करने लगता है। इस चरण को प्राणमय और अन्नमय कोष से सह–संबंधित किया जा सकता है। इस चरण में उपचार के रूप में योग कम प्रभावी होता है अतः इसमें योग को उपचार की अन्य विधियों के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जा सकता है।

- **जैविक चरणः** इस चरण में रोग स्थिति पूर्ण रूप से दिखाई देने लगती है तथा इसमें रोग विज्ञान संबंधी परिवर्तन जैसे आमाशय में व्रण (अल्सर) या पुराना उच्च रक्तचाप जैसे रोगों के लक्षण परिणामी जटिलताओं के साथ दिखाई देते हैं। इस चरण को अन्नमय कोष से सम्बन्धित किया जा सकता है, क्योंकि रोग शरीर में स्थित होता है। इस चरण में एक उपचार के रूप में योग का प्रभाव मात्र लघुकारक तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने तक सीमित हो सकता है। इसके अलावा इससे भावनात्मक और मनावैज्ञानिक प्रभाव सकारात्मक होते हैं, यहां तक कि जब व्यक्ति मृत्यु शैय्या पर पड़ा हो। अक्सर, रोग प्रक्रिया को आरंभिक स्थितियों को अनदेखा किया जाता है और अंतिम स्थिति को ही सब कुछ माना जाता है। इसमें किसी व्यक्ति की आदतें और जीवनशैली से इसका थोड़ा संबंध होता है। यह क्योंकि आधुनिक दवाओं से केवल शारीरिक पहलू पर ही प्रभाव होता है तथा पंचकोष और स्वास्थ्य रोग संबंधी प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

रोग होने संबंधी एक प्रमुख भारतीय अवधारणा त्रिदोषों का असंतुलन है। इसका वर्णन योग तथा आयुर्वेद के कई प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, जैसे 'शिव स्वरोदय', 'सुश्रुत संहिता', 'चरक संहिता' और तिरुमंदिरम्। द्रविड़ सन्त कवि तिरुवल्लुवर के अनुसार त्रिदोष (वात, कफ, पित्त) के असंतुलन से रोग उत्पन्न होता है। वात शरीर की ऊर्जा है जो वायु की तरह परिभ्रमण करती रहती है और शरीर में इसी के कारण रक्त प्रवाह होता है। यह तंत्रिका तंत्र और जोड़ों से भी संबंधित होती है, जिससे हम गतिशील रहते हैं। यह पित्ताशय स्राव से संबंधित है और शरीर में ऊष्मा उत्पन्न करने का कारण होती है। यह उपचय क्रिया की ऊर्जा है, जो उत्पादक और पुनरोत्पादक प्रक्रियाओं में सहायता करती है। जैसे ही ये तीनों असंतुलित हो जाते हैं, वैसे ही हमारे शरीर के विशेष भागों में इनका प्रभाव होने लगता है और विकार आने लगता है। जब वात का असंतुलन होता है तो मुख्यतया बड़ी आंत के रोग होने लगते हैं जैसे कब्ज और गैस, तथा साथ–साथ तंत्रिका तंत्र, रोग प्रतिकारक प्रणाली और जोड़ों के रोग भी होने लगते हैं। जब पित्त अधिक मात्रा में बढ़ जाता है, तो हम छोटी आंत के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं, जैसे दस्त के साथ–साथ जिगर, तिल्ली, थायराइड, रक्त, त्वचा आंखो के रोग हो जाते हैं। जब कफ अधिक मात्रा में बढ़ जाता है तो हमें आमाशय और फेफड़ों के रोग हो जाते हैं, अक्सर देखा जाता है कि जुकाम की स्थिति में बलगम अधिक आने लगता है, जिससे जल चयापचय संबंधी रोग भी हो जाते हैं जैसे शरीर के अंगों में सूजन आ जाती है। गोधूली बेला में योगाभ्यास करने से कफ में आराम मिलता है, दोपहर में अभ्यास करने से वात में आराम आता है तथा प्रातःकाल अभ्यास करने से पित्त के विकारों से आराम मिलता है। (अन्जनमपौंड्डुदलैयरूमंडियिलेवंजगा वाथमगरू भैद्दियानाथिर्क्षेजिरू कल्लैयिर्सैथिडिर्पितरुम् नंजारासो न्नोम्नराइथिराइनास नासमे तिरुमंदिरम् 727)

स्वर योग संबंधी एक प्राचीन ग्रंथ **शिवस्वरोदय** के अनुसार रोग तब विकसित होता है जब नासिका छिद्रों में **स्वर** (सहज तथा नियमित वायु प्रवाह) अपना निर्धारित समय और दिन पूरा नहीं कर पाते। सामान्य रूप से नासिका में **स्वर** का प्रवाह चन्द्र चक्र के चरण के अनुसार एक विशेष गति से होता है। यह भी कहा जाता है कि यदि रोग स्वर की अनियमित क्रिया होने से विकसित होता है तो उस बाधित क्रिया में सुधार लाने से उस रोग का इलाज हो सकता है। विभिन्न विकारों को समाप्त करने के लिए **स्वर** परिवर्तन हेतु विभिन्न तकनीकों के प्रयोग की सलाह दी जाती है।

प्रसिद्ध ग्रंथ **योगवासिष्ठ** में रोग उत्पन्न होने का कारण और उसके निदान का वर्णन बड़े ही तार्किक तरीके से किया गया है। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार की मानसिक बाधाओं एवं शारीरिक बीमारियों को पांच तत्वों (पंच महाभूत) में विभक्त कर अन्य भारतीय औषधि प्रणालियों के समान तरीके से वर्णित किया गया है। **सामान्य आधिजा व्याधि** को ऐसे वर्णित किया गया है, जैसे कि वे दिन–प्रतिदिन के कारणों से उत्पन्न हो रहे हों तथा **साराधिजा व्याधि** जन्म–पुनर्जन्म के चक्र से अवश्य होने वाली बीमारी है, जिसे जन्मजात रोगों के रूप में आधुनिक संदर्भ में समझा जा सकता है। पहले वाले को तो दिन–प्रतिदिन के उपचारात्मक उपायों से सुधारा जा सकता है जैसे दवाओं और शल्य चिकित्सा से, किन्तु **साराधिजा व्याधि** को तब तक समाप्त नहीं किया जा सकता है, जब तक कि आत्म–ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता। **विश्वसार तन्त्र** के गुरु स्रोत में भी यही विचार व्यक्त किया गया है कि गुरु के माध्यम से प्राप्त अन्तिम आत्म ज्ञान से जन्म–जन्मान्तर के कार्मिक बन्धन अवस्त हो जाते हैंः

अनेक–जन्म–सम्प्राप्त–कर्मबन्धविघातिने।

आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्री गुरवे नमः—गुरु स्तोत्रः श्लोक—1।

योग वासिष्ठ में, उस तंत्र का विस्तृत विवेचन दिया गया है, जिसके द्वारा मनोदैहिक विकार घटित होते हैं। मानसिक भ्रम से प्राण (जीवन शक्ति) उद्वेलित होते हैं और तंत्रिकाओं में बेतरतीव प्रवाह होने लगता है, जिसके परिणाम स्वरूप ऊर्जा की कमी/अथवा इन चैनलों में पर्याप्त ऊर्जा नहीं पहुंच पाती। इससे भौतिक शरीर में व्यवधान आ जाता है, विशेष रूप से चयापचय क्रिया में अवरोध पहुंचता है, अत्यधिक भूख लगती है और पूरे पाचन तंत्र की क्रिया गड़बड़ा जाती है। पाचन तन्त्र के माध्यम से भोजन की प्राकृतिक गति रुक जाती है, जिससे अनेक शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह ग्रन्थ हजारों वर्ष पुराना है, जबकि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मनादैहिक विकारों की अवधारणा को ही माना गया और अभी हाल ही में इसे स्वीकार किया गया। हमारे प्राचीन संतों में अन्तर्दृष्टि होती थी, और अब हमारा दायित्व है कि हम उनके सपनों को पूरा करें तथा उन्होंने मानवता के लिए जो महान सन्देश दिया था, उसे समझें।

पांडिचेरी में आनन्द आश्रम के संस्थापक योग महर्षि स्वामी गीतानन्द गिरि ने स्वास्थ्य और रोग के संबंध में काफी कुछ लिखा है। उन्होंने कहा कि 'योग मनोदैहिक रोगों के व्यापक और प्रचुर मात्रा में पनपने को उस दबाव और तनाव का प्राकृतिक प्रतिफल मानता है जिसकी उत्पत्ति आधुनिक प्रचार (प्रोपैगेंडा) से जन्मी इच्छाओं तथा शरीर के दुरूपयोग से हुई है जिसकी अनदेखी धर्म, विज्ञान और दर्शन द्वारा भी की गई है।' इसमें आधुनिक समाज का आहार 'घटिया खाना (जंक फूड)' का भी योगदान है, जिससे आप में अन्तहीन विकारों की संभावना बनी रहती है तथा मनुष्य के अपने ही अज्ञान और कुकर्मों से वह विनाश के कगार पर पहुंच रहा है। उन्होंने रोग के मूल कारण को इस प्रकार समझाया हैः "योग एकत्व की एक समग्र और एकीकृत अवधारणा रूप में अद्वैत या स्वभाव से द्वंद्व रहित है। इसमें प्रसन्नता, सामंजस्य और विश्रान्ति निहित है। जब मानव—मन में द्वन्द्व या द्वैत मौजूद होता है तो रोग उत्पन्न होता है। द्वन्द्व की इसी झूठी अवधारणा से मानव—मन के सभी संघर्ष और मानव विकारों की विशाल सूची तैयार हुई है। मनुष्य के पतन का प्रमुख कारण यही दै्त्व (रोग) होता है।"

तिरुवल्लुवर ने अधिक भोजन करने और रोग के सम्बन्ध पर यह कहते हुए जोर दिया है कि "जो व्यक्ति खाली पेट होने पर खाता है वह स्वस्थ रहता है और जो लालच से अधिक खाता है, वह अस्वस्थ रहता है।"

वह हमें यह भी चेतावनी देते हैं कि जो भूख के स्तर से अधिक खाते हैं उन्हें बेहद कठिनाइयों का सामना करना होगा। वह सभी चिकित्सकों (डाक्टरों) को यह सलाह देता है कि पहले रोग का पता लगाओ और फिर इसके मूल कारण का पता लगाओ और अन्त में उस विशेष अन्तर्निहित कारण का उपाय खोजो।

योग यह बताता है कि ऐसे शारीरिक रोग जो मनोदैहिक प्रकृति के नहीं होते, उन्हें शल्य चिकित्सा, औषधि, प्रार्थना और जीवनशैली में आवश्यक सुधार लाकर प्रतिबंधित किया जा सकता है। शारीरिक रोगों के उपचार में विभिन्न योग तकनीकों के उपयोग से सहायता मिलती है और आवश्यक रूप से जीवन का उत्थान, स्वस्थ हो जाने और पुनर्वास के साथ स्वास्थ्य बहाल हो जाता है। जीवन में योग को अपनाने का प्रमुख लाभ दुर्घटना से बचना है। योग से व्यक्ति में बेहतर सतर्कता, सजगता और शारीरिक शक्ति आ जाती है, इससे उसका दुर्घटनाओं से बचाव होता है और शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के आघातों को झेलने की शक्ति मिलती है। इसकी संरक्षणात्मक और सुधारात्मक विशेषताओं के अलावा योग का उद्देश्य सकारात्मक स्वास्थ्य का संवर्धन करना भी है, जिससे हम अपने जीवन में स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों से निपटने में समर्थ हो जाते हैं। यह वैसा ही तथ्य है, जैसे हम आर्थिक संकटों का मुकाबला करने के लिए बैंक में पैसे की बचत करते हैं, इसी प्रकार हम अप्रत्याशित स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियां से निपटने के लिए अपने सकारात्मक स्वास्थ्य का संतुलन भी रख सकते हैं, जिससे रोग शीघ्र ही ठीक हो जाता है और हम एकदम स्वस्थ हो जाते हैं। आधुनिक समय में स्वास्थ्य के प्रति सजगता में सकारात्मक स्वास्थ्य की अवधारणा में योग का अनुपम योगदान है, लोगों की स्वास्थ्य सजगता में योग की संरक्षात्मक और संवर्धनात्मक दोनों भूमिकाएं होती हैं। यह सस्ती प्रणाली भी है और रोगियों को लाभ पहुंचाने के लिए इसका उपयोग समन्वित तरीके से दवा की अन्य प्रणालियों के साथ मिलाकर भी किया जा सकता है।

3.7 स्वस्थ रहने के यौगिक सिद्धान्त (आहार, विहार, आचार, विचार)

''स्वास्थ्य ही धन है'' यह एक प्रमाणित तथ्य है। एक स्वस्थ जीवन जीने के लिए अनिवार्य है कि हम अच्छी चीजें करें और एक स्वस्थ जीवन शैली अपनाएं। आधुनिक जगत जीवन शैली की व्यापक विकृतियों की विडम्बना झेल रहा है, जिसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता है तथा जिसे व्यक्ति स्वयं सचेतन रूप से ला सकते हैं। उचित और स्वस्थ जीवन शैली अपनाने में योग का बड़ा महत्त्व है, इसके मुख्य घटक इस प्रकार हैं:

1) **आचारः उचित आचार (नियमित दैनिक कार्य) द्वारा बेहतर मानसिक स्वास्थ्यः** योग में स्वस्थ कार्यकलाप के महत्त्व पर जोर दिया जाता है, जैसे–नियमित व्यायाम तथा आसन, प्राणायाम और क्रियाओं की संस्तुति की जाती है। सलाह दी जाती है कि इन्हें दिनचर्या बिल्कुल नियमित रूप से करनी चाहिए। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कार्य, भोजन, व्यायाम और सोने के समय का ध्यान रखा जाए। नियमित आचार का एक उत्तम उदाहरण सूर्य है। इस प्रकार के स्वस्थ कार्यकलाप का एक मुख्य परिणाम है हृदय और श्वास संबंधी स्वास्थ्य।

2) **विचारः सही विचारों द्वारा उत्तम बौद्धिक स्वास्थ्यः** जीवन के प्रति उचित विचार और उचित दृष्टिकोण (अभिवृत्ति) होना हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। संतुलित मानसिक स्थिति को नैतिक नियंत्रण और नीतिपरक मूल्यों (यम–नियम) का पालन करके हासिल किया जा सकता है। महात्मा गांधी ने कहा थाः ''प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिए इस दुनिया में बहुत कुछ मौजूद है, किन्तु किसी व्यक्ति की लालसा के लिए यह पर्याप्त नहीं है।''

3) **आहारः ''**अन्नम् ब्रह्म'' भोजन ब्रह्म है। योग में स्वस्थ, पोषक तत्वों से भरपूर आहार की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, जिसमें संतुलित ताजे आहार के साथ ताजा पानी, हरा सलाद, अंकुरित अन्न आदि, अशोधित अनाज और ताजे फल शामिल हैं। **सात्त्विक** आहार की आवश्यकता के प्रति सजग रहना बड़ी बात है, और यह प्रेम और स्नेह से बनाया हुआ होना चाहिए, और भोजन परोसने में भी वही भाव होना आवश्यक है।

कब खाना चाहिए?

प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि व्यक्ति को सूर्योदय के समय रातभर का व्रत तोड़ना चाहिए और सूर्यास्त के समय अंतिम भोजन कर लेना चाहिए।

- राजा की तरह नास्ता करो। जो कुछ भी हम सुबह के समय खाते हैं, उसका अवशोषण और संचय अधिकतम होता है। इसलिए सुबह का भोजन पूर्ण रूप से पौष्टिक होना चाहिए।
- दोपहर का भोजन एक राजकुमार की तरह करोः दोपहर का भोजन ऐसा होना चाहिए जो आसानी से पच जाए।
- शाम का अल्पाहारः अपनी–अपनी पसंद के अनुसार किसी भी तरह के स्वाद का नाश्ता लिया जा सकता है।
- रात का भोजन एक भिखारी की तरहः रात का खाना पूरे दिन के भोजन से सबसे हल्का होना चाहिए।

क्या खाया जाए?

''जैसा खाओ अन्न, वैसा होता मन'', और जैसा मन होता है, वैसा ही आदमी होता है।

- **सात्त्विक भोजन** – पाचक भोजन आराम से खाओ, इससे विश्रान्ति और शान्ति की भावना आती है।
- **राजसिक भोजन** – इस भोजन से बड़ी मात्रा में ऊर्जा मिलती है, यह आसानी से नहीं पचता तथा इससे मन विचलित होता है, इसलिए इससे बचना चाहिए।
- **तामसिक भोजन** – यह बासी भोजन है तथा इसे पचाने में काफी समय लगता है इसको खाने से व्यक्ति सुस्त, निष्क्रिय, आलसी हो जाता है इससे तो अवश्य बचना चाहिए।

4) **विचार** – "**विचार से बेहतर भावनात्मक स्वास्थ्य**" – अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित मनोरंजक कार्यकलाप होने चाहिए जिससे शरीर और मन को आराम मिले। इसमें पूर्ण विश्रान्ति की अवस्था रहती है। वाणी तथा विचार भी शांत हों। उस तरह की गतिविधि भी हो सकती है, जिनमें व्यक्ति व्यष्टित्व की भावना खो दे। समष्टि की भावना अपनाने और व्यष्टि की भावना छोड़ने के लिए कर्मयोग सबसे शानदार तरीका है। समष्टि सक्रिय रचनात्मक शौक होने से दबी हुई भावनाएं निकल जाती हैं और मन तरोताजा हो जाता है। ऐसे कार्यकलाप, जैसे–बागवानी, कोई संगीत का यंत्र बजाना, गीत या कविताओं का गायन, कलाकृति बनाना तथा पेंटिंग या अन्य ऐसे शौक जो व्यक्ति को पसन्द होते हैं, करने से आनन्द की प्राप्ति में सहायता मिलती है। बगीचे, समुद्रतट, झील अथवा नदी के किनारे, सुबह या शाम के समय पहाड़ की चोटी पर प्रकृति की सैर करने से शरीर, मन और आत्मा जीवन्त हो उठती है। साधारण खेल वाले कार्यकलाप जैसे आपस में गेंद/रिंग खेलना या फेंकना या डफ बॉल खेलना, ऐसे खेल नियमित रूप से हंसते हुए खुशी से खेलने से शरीर, मन एवं आत्मा तरोताजा हो जाते हैं। बच्चों के साथ खेलने या बच्चों के कार्यकलाप के साथ घुलमिल जाने से भी आराम और ताजगी प्राप्त होती है। लम्बे समय तक कठोर शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने के बाद हठ योग की चैतन्य विश्रान्ति वाली क्रियाएं जिनमें शवासन या निस्पंदभाव क्रियाएं शामिल हैं। इन्हें करने से व्यक्ति को आराम और ताजगी मिलती है। चैतन्य विश्रान्ति से नींद भी अच्छी आती है, शरीर को बहुत आराम मिलता है और मन एकदम शान्त व निश्चिन्त हो जाता है।

कार्यकलाप 15

1. स्वस्थ जीवन के यौगिक सिद्धान्तों की सूची बनाइए।

2. आचार और आहार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3.8 स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए योग का समेकित दृष्टिकोण

मनोमय कोष में स्थित बाधा प्राणमय कोष के माध्यम से शारीरिक (अन्नमय कोष) में फैल जाते हैं। इसलिए इन मनोदैहिक रोगों के उपचार में शीघ्र परिणाम प्राप्त करने के लिए हमारे अस्तित्व के इन सभी स्तरों पर कार्य करना अनिवार्य हो जाता है। अतः एकीकृत पद्धति केवल शारीरिक परत से संबंधित नहीं है जिसका प्रभाव अस्थाई रूप से हो, जैसा कि मनोदैहिक प्रकार के रोगों, जैसे दमा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि के उपचार के लिए आधुनिक चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली दवाओं से हो रहा है। इसमें ऐसी तकनीकें सम्मिलित हैं, जो हमारे अस्तित्व के अलग–अलग आवरणों में संचालित होती हैं। योग संबंधी ग्रन्थों और उपनिषदों में उपलब्ध बहुत सी क्रियाएं, ऐसी हैं जिन्हें पांचों कोषों के अवरोधों को संतुलित करने और सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयोग किया जाता है तथा इस प्रकार के बहुत से मनोदैहिक रोगों का उपचार हो जाता है। प्रत्येक कोष से सबंधित क्रियाएं नीचे दी गई हैं जिनका उपयोग एकीकृत स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए किया जा सकता है।

क) अन्नमय कोष (शारीरिक परत) सम्बन्धी क्रियाएं

अन्नयमय कोष स्तर को व्यवस्थित रखने के लिए तथा रोगों के भौतिक लक्षण दूर करने के लिए स्वस्थ यौगिक आहार, क्रियाएं, हलका व्यायाम और योगासन किए जाते हैं।

i) *क्रियाएः* हमारे शरीर के भीतरी अंगों की स्वच्छता के लिए हठयोग में वर्णित ये यौगिक प्रक्रियाएं हैं। इनसे निम्नलिखित प्रभाव होते हैंः (क) अंगों को सक्रिय और मजबूत बनाना (ख) उनकी क्रियाओं को गतिशील बनाना (ग) विसंवेदीकरण (घ) गहन आंतरिक बोध लाना। योग ग्रंथों में वर्णित मुख्य क्रियाओं में से कुछ क्रियाओं के सरलीकृत संस्करण जैसे कैथेटर नेति, जल नेति, कपालभाति, अग्निसार, वमन धौति (कुंजल क्रिया) आदि को विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता है।

ii) *शारीरिक व्यायाम और गतिविधि – शिथिलीकरण व्यायाम*

शरीर के प्रभावित अंगों को गतिशील व क्रियाशील बनाने के लिए बहुत आसान शारीरिक व्यायामों का प्रयोग किया जाता है। कुछ शारीरिक व्यायाम विशेष रोगों के उपचार हेतु अपनाए जाते हैं। जैसे – (क) जोड़ों को लचीला बनाना (ख) मांसपेशियों का विस्तारण स्वाभाविक एवं शिथिलीकरण (ग) शक्ति में सुधार लाना तथा (घ) शारीरिक क्षमता को विकसित करना।

iii) *योगासन–शारीरिक मुद्राएं*

योगासन शारीरिक मुद्राएं हैं, जिन्हें मन को शान्त बनाने के प्रयोजन से पशुओं की स्वाभाविक मुद्राओं का अनुकरण करके व्यवहार में लाया जाता है। इन आसनों के माध्यम से शरीर को सशक्त बनाया जाता है और इनसे गहन विश्रान्ति व मानसिक शान्ति मिलती है।

ख) प्राणमय कोष (प्राण की परत)

प्राण मूल जीवन का सिद्धान्त है। प्राण पर नियंत्रण करने के लिए प्राणायाम की प्रक्रिया होती है। **'प्राणोपनिषद्'** में वर्णित मानव प्रणाली में प्राणायाम की परिभाषा सबसे व्यापक रूप से दी गई है, जिसमें प्राणायाम के पांच स्वरूप बताए गए हैं। उसमें श्वसन के नियमन के माध्यम से पारम्परिक प्राणायाम का वर्णन किया गया है।

उचित श्वसन क्रिया के अभ्यास, क्रियाओं और प्राणायाम के माध्यम से हम प्राणमय कोष में क्रिया संचालित करने लगते हैं। उचित तरीके से प्राणायाम और श्वसन क्रिया के अभ्यास से प्राणमय कोष में प्राणों के प्रवाह में होने वाले अवरोध दूर करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार इस प्राणमय कोष के स्तर पर रोगों को नियंत्रित किया जाता है।

ग) मनोमय कोष संबंधी क्रियाएं (मानसिक परत)

i) *धारणा और ध्यानः* इस स्तर पर प्रत्यक्ष उपचार पतंजलि के अष्टांग योग के अन्तिम तीन अंगों– धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा संभव हो सकता है। मन के संवर्धन की प्रक्रिया प्रारंभिक रूप से मन को किसी एक वस्तु पर एकाग्र रखने (धारणा) से पूरी होती है, उसके बाद मन को काफी लम्बे समय तक एक ही विचार (ध्यान) पर विश्रान्ति की स्थिति में रखा जाता है, जिससे अन्ततः चेतना की चरम स्थिति (समाधि) में पहुंच जाते हैं। ध्यानावस्था (ध्यान) की अवधि में एक लगातार अभ्यास से मन विश्रान्ति की अवस्था में आ जाता है। अनुभवातीत ध्यान (टी.एम.), जो एक साधारण मानकीकृत तकनीक है, के कई प्रकार के लाभ हैं, जो दिलचस्प और उल्लेखनीय होते हैं। बहुत से मनोदैहिक रोगों के उपचार में इसका प्रयोग लोकप्रिय हो गया है।

ii) *संवेग नियंत्रण*

मानसिक परेशानियों के मूल कारण से निपटने व उन पर नियंत्रण करने के लिए हम उन योग तकनीकों का प्रयोग करते हैं, जो हमारे संवेगों को नियंत्रित करती हैं।

एक भक्ति सत्र द्वारा जिसमें प्रार्थना, मंत्रोच्चार, भजन, नामावली, धुन, स्रोत का पाठ होता है, एक ऐसा वातावरण बनता है, जिससे संवेगों को प्रकट किया जाता है और उनकी पहचान होती है। उन्हें क्षीण किया जाता है तथा शान्त किया जाता है। इस प्रकार भक्ति सत्र से संवेगो पर नियंत्रण हो जाता है। ऐसे नियंत्रण से संवेगात्मक असन्तुलन और उत्तेजना की लहर समाप्त हो जाती हैं।

घ) विज्ञानमय कोष (विवेक अथवा प्रज्ञा सम्बन्धी परत)

भृगु इस अद्भुत खोज के बारे में वरूण को बताते हैं, गुरू प्रसन्न हैं और कहते हैं ''आगे चलते रहो। तुम्हें कुछ कदम और आगे बढ़ना है, तुम सही दिशा में चल रहे हो।'' अब गहन लम्बे तपस

के माध्यम से भृगु को अनुभूति होती है कि यह विज्ञान (ज्ञान) ही है, जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है और यही अन्तिम सत्य या वास्तविकता हो सकती है।

विज्ञानमय कोष हमारे अस्तित्व की चौथी परत है। हम सबके दो मन होते हैं। उदाहरण के लिए जैसे मनोमय कोष कहता है कि ''यह सुन्दर गुलाब है, मैं इसे लेना चाहता हूं'' और आप अपने हाथ को फूल तोड़ने का आदेश करने लगते हो, किन्तु भीतरी मन कहता है ''माफ करना, तुम इस फूल को नहीं तोड़ सकते, यह तुम्हारा नहीं है, यह तो पड़ोसी का बगीचा है'' और तुम स्वयं को रोक लेते हो। यही आंतरिक चेतना हमें लगातार मार्गदर्शन करती रहती है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, यही विज्ञानमय कोष है। यही मन का वह भाग है, जिसके माध्यम से मानव जाति इतने आगे बढ़ी है कि मनुष्य और पशु में अन्तर हो गया है। यह हमारी करणीय और अकरणीय के मध्य विभेद करने और करणीय का वरण करने की शक्ति है।

भर्तृहरि ने इस तथ्य को उजागर किया है कि यह संकाय, यानी विज्ञानमय कोष किस प्रकार मनोमय कोष को लगातार मार्गदर्शन देता रहता है, इसे उन मूल प्रवृत्तियों पर महारत हासिल है, जो खाने, संभोग करने, डरने और सोने से संबंधित होती हैं। इसलिए हम जानते हैं कि मनुष्य में ये सारी मूल प्रवृत्तियां मनोवैज्ञानिक होती हैं। उदाहरण के लिए, हमने पशुओं वाला वह चक्रीय व्यवहार खो दिया है जो यौन व्यवहार के लिए मद चक्र (गर्मी) उनमें अभी भी मौजूद है। स्वतंत्रता का यही तत्व है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात होता है, जो हमें यह विभेद करने का मार्गदर्शन देता है कि ''अच्छा क्या है और बुरा क्या है'', यानी ''अच्छा और बुरा'', ''उचित और अनुचित'', इसी ज्ञान से सुख (प्रसन्नता) मिलता है। इस प्रकार विज्ञानमय कोष विभेदक संकाय है।

विज्ञानमय कोष से क्रिया संचालित करने के लिए एक बुनियादी विचार महत्त्वपूर्ण है। उपनिषद् ऐसे ज्ञान के खजाने हैं, जो सभी दुःखों और परेशानियों के उद्धारक हैं। बहुत सी गलत आदतों और परेशानियों का कारण आन्तरिक ज्ञान की कमी है। प्रसन्नता का जैसा विश्लेषण तैत्तिरीय उपनिषद् में किया गया है, उसमें समस्त जीवित प्राणियों से संबंधित अधिकांश मौलिक समस्याओं का समाधान मौजूद है। इस विश्लेषण में पाठक व्यवस्थित रूप से उस बुनियाद तक पहुंचता है, जहां से प्राण और मन का मिलन हो जाता है, यही आनन्दमय कोष है। इससे व्यक्ति को लालच की प्रवृत्ति को परिवर्तित करने में सहायता मिलती है तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है और फिर उस आनन्द की अनुभूति होने लगती है जो हमारे अपने भीतर मौजूद है, यही सन्निहित आनन्द की स्थिति होती है। परिणामस्वरूप, जीवन में मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है। ज्ञान से गहन आसक्ति, आग्रह, पसन्द व नापसन्द समाप्त हो जाते हैं, जो मन को विचलित करने के बुनियादी कारण होते हैं। इस ज्ञान (आत्मज्ञान या स्वानुभूति) से सार प्रकार की आधियां भी दूर हो जाती हैं।

ङ.) आनन्दमय कोष (परमानन्द की परत)

वरुण अब अपने पुत्र को तपस में वापस जाने का आदेश देता है, और इस समय भृगु कभी वापस नहीं लौटता है। गुरू यह देखने जाता है कि पुत्र वापस क्यों नही लौटा। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भृगु गहन आनन्द में पूर्ण रूप से तल्लीन है। वहां विज्ञान और मनोमय कोष का कोई व्यक्ति 'मैं' मौजूद नहीं है, जो पिता को अपनी अनुभूति के बारे में बता सके। भृगु अब उस अन्तिम सत्य के ज्ञान में स्थित हो गया था, जो आनन्द इस ब्रह्मांड का मौलिक उपादान है, जिससे हर वस्तु का सृजन हुआ है।

यह आनन्दमय कोष कहलाता है – हमारे अस्तित्व की परमानन्दमय परत। यह हमारे अस्तित्व का सबसे सूक्ष्म पहलू है, जिसमें अन्य कोई संवेग या भावना निहित नहीं होती, यह पूर्ण शान्ति की अवस्था है – पूर्ण समत्व और स्वास्थ्य की अवस्था है।

मनोमय कोष में समत्व रचनात्मक शक्ति का प्रभुत्व होता है, तो विज्ञानमय कोष में विचार करने और विभेद करने की शक्ति होती है। परमानन्द आनन्दमय कोष में सन्निहित है जो व्यक्त अस्तित्व में विकास की सर्वोच्च अवस्था है। मनुष्य के अंतिम सत्य तक पहुंचने की यात्रा में उसे बारी–बारी से अस्तित्व के इन कोषों को पार करना होता है। विश्लेषण में इसे ''पंचकोष विवेक'' (अनुभव द्वारा ज्ञान, व्यक्ति के अस्तित्व के पांच कोष) कहा गया है तथा इससे संबंधित क्रियाओं को 'तपस' कहा गया है, जिनके माध्यम से व्यक्ति धीरे–धीरे स्वयं को रूपान्तरित करता है और प्रत्येक कोष की बाधाओं व बंधनों से मुक्त होकर विश्राम की स्थिति में आ जाता है। जैसा कि उपनिषदों में वर्णित है कि अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने की यह एक विधि है।

हमारे सभी कर्मों में हमारे अस्थाई शरीर (कारण शरीर) में आनन्द का संचार होना आनन्दमय कोष कहलाता है, जो बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थ जीवन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इससे हमारे जन्मजात रोग हर शक्ति सक्रिय हो जाती है जिससे हमारे रोगों पर प्रभाव पड़ता है और उनका पूरा उपचार हो जाता है। इसमें प्रयोग की जाने वाली तकनीकें कर्म योग के अन्तर्गत आती हैं, जो कर्म का रहस्य होता है।

जब हम अपने सभी प्रकार के कार्य करते हैं तो मानसिक स्तर पर यह रहस्य आन्तरिक शान्ति, समत्व बनाए रखने में निहित होता है। सामान्य रूप से हम जिन चीजों को पसन्द नहीं करते या पसन्द करते हैं हम उन पर परेशान हो जाते हैं और उत्तेजित हो जाते हैं। मगर हमें समत्व या सामंजस्य बनाए रखना होता है। अगला कदम है जब हम कार्य कर रहे होते हैं तो हमारे मन की आंतरिक सूक्ष्म परतों में गहन शान्ति और आनन्द जाग्रत होना चाहिए।

यह कार्य आत्म–बोध से स्वयं को परिवर्तित करने की अनवरत इच्छाशक्ति से और आत्म–संसूचन (ऑटो सजेशशन) से संपन्न होता है। पहले सोपान में यह पहचान करनी होती है कि ''मुझे तनाव हो रहा है।'' इसे समाप्त करने हेतु अपने भीतरी सम्पूर्ण आनन्द, शान्ति और विश्रान्ति को जाग्रत करना होता है। इस बात को दिन में कई बार याद करते रहो कि मेरे भीतर ही असीम शान्ति मौजूद है। योगाभ्यास करते समय चेहरे पर मुस्कराहट और विश्राम का भाव बनाए रखो।

कोष	स्थिति	क्रिया
अन्नमय कोष	जैविक शरीर	चलचित्र डाउनलोड करें, फेसबुक पर पारिवारिक तस्वीरें, सप्ताहांत संबंधी सामूहिक तस्वीरें (पार्टी की) अपलोड करें
प्राणमय कोष	ऊर्जा शरीर, शक्ति	स्वास्थ्य के उद्देश्य से खेलकूद, योग कार्यशालाओं में सम्मिलित हों
मनोमय कोष	मानसिक शरीर, विचार और भावनाएं	लोगों की मदद करें, सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित हों
विज्ञानमय कोष	बौद्धिक शरीर, आध्यात्मिक विभेदीकरण और विवेक	ज्ञान की प्राप्ति

आनन्दमय कोष	आनन्द शरीर, शुद्ध चेतना	परमानन्द की स्थिति, शरीर अब भी चेतना में है

3.8.1 मनोदैहिक स्वास्थ्य के लिए योग में संवेदी प्रतिपुष्टि की घटना

हमारी संवेदी तंत्रिकाएं समस्त संवेदी अंगों के माध्यम से (i) बाहरी जगत् तथा (ii) शरीर के भीतर से भी आवेगों को लाती हैं और इन्हें मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों तक पहुंचाती हैं। बर्हिसंवेदी आवेग शरीर के बाहर हमारे वातावरण से संबंधित होते हैं और अन्तः संवेदी आवेग आन्तरिक शरीर की क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित होते हैं। अन्तःसंवेदी आवेग दो प्रकार के होते हैः बहिरंगग्राही (जोड़ो से संबंधित गति, शरीर की स्थिति तथा मांसपेशीय प्रणाली से संबंधित सजगता) तथा आंत्रग्राही (संवेग हमारे आंत्रीय अंगों से संबंधित होते हैं)। उल्लेखनीय है कि एक बड़ी सीमा तक अन्तःसंवेदी आवेश हमारी चेतना की परिधि में प्रविष्ट नहीं होते क्योंकि अनुक्रियाएं और स्वतः होने वाली क्रियाएं तंत्रिका प्रणाली के निचले केन्द्रों से संबंधित होती हैं। यौगिक क्रियाएं यदि परंपरागत तरीके से की जाती हैं, तो इनसे आन्तरिक संवेदनाएं चेतना स्तर तक पहुंच जाती हैं। इनसे उत्पन्न होने वाली सांवेदिक प्रतिपुष्टि घटना से हमारे समस्त क्रियाकलाप पर कहीं बेहतर सजग नियंत्रण होता है। योग तकनीकों से आंतरिक जागरूकता बढ़ने के कारण हमारी गहन जागरूकता के क्षेत्र में वृद्धि होती है, जिसमें सूक्ष्मतम गतिविधियां भी शामिल हैं। इस प्रकार योग साधक व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण स्तर तक आन्तरिक अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण करने और उन्हें नियमित बनाने में समर्थ हो जाता है। हठ योग ग्रन्थ में योग के मनोदैहिक प्रभावों के आभास के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

3.9 योग तथा यौगिक आहारीय विचार से तनाव प्रबंधन

तनाव एक दुष्प्रभावी अनुक्रिया है, जो संबंधित व्यक्ति में उसकी विशेषता के अनुरूप होती है तथा उसके अनुभव व अत्यधिक मनोदैहिक, मनो–सामाजिक और जैव–पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं से संबंधित होती है।

पतंजलि योग सूत्र के अनुसार ''तनाव एक मनोशारीरिक असंतुलन की अवस्था है, जिसकी अनुभूति अपने आप का मानसिक वृत्तियों के साथ एकात्मीकरण के कारण होती है तथा जो हमारी अस्तित्व संबंधी वेदना और मनस्ताप, (जिन्हें क्लेशों की संज्ञा दी गई है) से उत्पन्न होती है एवं सामाजिक वातावरण तथा मनोशारीरिक अनुक्रिया प्रारूपों द्वारा प्रेरित होती है।''

3.9.1 योग द्वारा तनाव को कम करना

यू–स्ट्रैस–डिस्ट्रैस द्विभाजन में योग का कोई योगदान नहीं होता। योग के मतानुसार मानसिक गतिकी को पूरी तरह से शान्त किया जा सकता है, (प.यो.सू. 1:2), जिससे व्यक्ति यहीं पर और अभी अपने अनुभवातीत 'स्व' को महसूस करता है (प.यो.सू. 1–3)। चेतना की इस अनुभवातीत स्थिति को यौगिक साहित्य में रचनात्मक और जीवन और जीवनयापन से संबंधित सांसारिक तनाव से कहीं ऊपर माना जाता है। हम जिस सीमा तक इस दिव्य स्थिति का अनुभव करते हैं, उसी सीमा तक हम अपने आप को मन की वृत्तियों के साथ एकात्मीकरण से परे ले जाते हैं। इस का आशय है कि हम योगाभ्यास में जितनी प्रगति करेंगे, हमारा मनोदैहिक संतुलन उतना ही सुदृढ होगा। इससे समत्व प्राप्त होता है (भगवद्गीता 2:47), जिसमें हमारे सारे कर्म कौशलपूर्ण और रचनात्मक बन जाते हैं (भगवद्गीता 2:49)। इस प्रकार योगाभ्यास करने वाले को सभी मानसिक विकारों से रहित एवं निरंतर विकास व पूर्णता से सम्पन्न सकारात्मक स्वास्थ्य की अनुभूति होने लगती है। योगाभ्यास के प्रभाव से योग साधक का तनावों के प्रति रवैया और धारणा बदल जाने के कारण उसमें अनुपम सामर्थ्य आ जाता है और तनाव समाप्त हो जाता है।

3.9.2 आहार के द्वारा प्राण संयमन (ऊर्जा की गतिकी का व्यवस्थित प्रवाह)

हठप्रदीपिका (II:2) में कहा गया है कि चित्त और प्राण एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। एक को सुधारने से दूसरा भी सुधर जाता है। प्राण सभी दैहिक क्रियाओं के लिए आधार तैयार करता है तथा समस्त दैहिक क्रियाएं मुख्य रूप से तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र और पाचन तंत्र द्वारा संचालित होती हैं इसलिए इन तंत्रों की अपसामान्य क्रियाओं का मनुष्य के क्रियात्मक–जगत पर प्रतिकूल प्रभाव होता है, जिससे प्राण की अपसामान्य क्रिया का पता लगता है। अशांत प्राण, जिसे विसूची प्राण कहा गया है, भी मन की कार्यात्मकता को प्रभावित करता है। इस दुश्चक्र से मनुष्य में दूषित भावनाएं, विचार, और व्यवहार आने लगते हैं। इसलिए अधिक नमकीन, खट्टा, चटपटा, गर्म और मसालेदार भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि इनसें तंत्रिका तंत्र उत्तेजित होता है तथा इससे जलन उत्पन्न होती है। इसी कारण मांसाहारी भोजन से भी सामान्य नियमानुसार परहेज करने के लिए कहा गया है। लगभग सभी यौगिक ग्रंथों में यही कहा गया है कि मनोदैहिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित व शान्त करने से ही प्राण की क्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है और यही सकारात्मक स्वास्थ्य का मार्ग होता है। पतंजलि योग में यम, नियम तथा हठयोग के द्वारा सलाह दी गई कि अधिक जनसम्पर्क से दूर रहें, इसमें सम्प्रेषित करने के लिए यही सन्देश है। हमारी मनोदैहिक प्रणाली को सुव्यवस्थित रखने के लिए सार्थक रूप से संतुलित सामाजिक जीवन और सद्भावपूर्ण सामाजिक समायोजन बहुत आवश्यक है। इससे मानव शरीर के भीतर एक आदर्श प्राणिक क्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है।

छन्दोग्य उपनिषद् में बताया गया कि संतुलित आहार से मन के परिशोधन में सहायता मिलती है और इस प्रक्रिया में मानसिक विकार दूर होने लगते हैं।

''भोजन की शुद्धता से आन्तरिक अंगों की शुद्धता रहती है, आन्तरिक अंगों की परिशुद्धता से अनन्त की अमोध स्मृति आती है। स्मृति आ जाने से सभी प्रकार के मनोदैहिकी बंधन/विकार मिट जाते हैं।'' (छ.उ. VII. 26.2)

आहार संबंधी विचार के बारे में भगवद्गीता, घेरंड संहिता और हठ प्रदीपिका निम्नलिखित तथ्य पर एकमत हैं:

''ऐसे खाद्य पदार्थ जो सरस, सुपाच्य, पौष्टिक और स्वीकार्य होते हैं, इनसे जीवन विकसित होता है मन की दृढ़ता, शक्ति, स्वास्थ्य और प्रसन्नता बढ़ती है, जो ऐसा आहार लेते हैं वे सत्वगुण से सम्पन्न होते हैं भगवद्गीता (17:8)''।

3.9.3 यौगिक आहार का तर्काधार

योग क्रियाओं से संवेदनशीलता में वृद्धि होती है तथा तंत्रिका तंत्र में उच्च स्तरीय संवेदी क्रियाकलाप होने लगते हैं, कुछ अभ्यासों को एक निश्चित स्तर तक करने पर तंत्रिका तंत्र संवेदनशील और कोमल हो जाता है। इसका प्रभाव हमारी समग्र अनुभूति करने, सोचने–विचारने व व्यवहार करने की प्रणाली पर पड़ता है, जिससे यह चेतना की गहन अवस्था की ओर बढ़ती है। तंत्रिका तंत्र की आन्तरिक उत्तेजना होने पर व्यक्ति स्वाभाविक रूप से उत्तेजक चीजों को छोड़ देता है: जैसे नमक, मसाले, मदिरा, मांस, अंडा, मछली और धूम्रपान तथा अधिक गर्म व बहुत ठंडी चीजों को खाना बन्द कर देता है। मांसाहारी भोजन वाली चीजों में सोडियम की मात्रा अधिक होने से तंत्रिका तंत्र में उत्तेजना उत्पन्न होती है। गाय के दूध, मक्खन और घी में हल्का सा असंतृप्त वसा अम्ल होता है, जिसके चिपचिपे निक्षेपण से तंत्रिकाओं के रेशे नर्म हो जाते हैं और तंत्रिका का संचालन बेहतर रहता है, और साथ ही तंत्रिका तंत्र शान्त और स्वस्थ रहता है।

यह दिलचस्प बात है कि न्यूरो ट्रांसमीटर सूक्ष्म मात्रा में होते हैं। इसके अलावा सूत्रयुग्मन में विद्युतीय ऊर्जा मिलिवोल्ट में होती है। शिव संहिता (बी.23) में दिए गए विवेचन के अनुसार कहा गया है कि भोजन का सबसे बढ़िया सार(रस) सूक्ष्म शरीर के पोषण के लिए चला जाता है। छांदोग्य उपनिषद में भी यही कथन है (छां. उप. 6:51)।

प्राणायाम में निलंबित श्वसन क्रिया के दौरान और ध्यान संबंधी क्रियाओं में धीमी गति से श्वसन करने से तंत्रिका तंत्र मोटर क्रियाकलाप वाली परिधि के साथ कम से कम आंशिक रूप से अपना सम्पर्क खो देता है तथा इससे आमाशय – बड़ी आंत के मार्ग में भोजन का अवरोध आ जाता है, इसलिए ऐसे खाद्य पदार्थ जिनमें जल्दी सड़न आ जाती है और जिनसे गैस बनती है तथा ऐसा भारी भोजन जिससे बड़ी आंत में अधिक दबाव पड़ने से आंतों में दर्द होने लगता है, ऐसे भोजन को नहीं लेना चाहिए।

सारांश में, यह बिल्कुल ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त सभी यौगिक विधियां तथा यौगिक आहारीय विचार आवश्यक रूप से सभी व्यक्तिगत तथा अन्तर्द्वन्द्वों तथा अपसमायोजन का उपयुक्त उपचार है।

कार्यकलाप 16

1. योगाभ्यास के लिए यौगिक आहारीय विचारों के तर्काधार और महत्त्व को स्पष्ट करें।

3.10 सारांश

आधुनिक जीवन के तनाव और जीवनचर्या हमारे मनोदैहिक स्वास्थ्य को ही प्रभावित नहीं कर रहे हैं, बल्कि इनसे हमारे मानवीय मूल्यों का क्षरण भी हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप मनोदैहिक और मानसिक विकार तथा समायोजन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। योग मनोदैहिक और (आवश्यक रूप से पूर्ण होने से इन) अस्तित्व संबंधी समस्याओं को नियंत्रित करता है। योग से हमे बुद्धि को स्थिर और सात्त्विक बनाने में सहायता मिलती है, जिससे मन (अर्थात् मानस) शान्त होने लगता है। योग वासिष्ठ के अनुसार मन के शान्त होने की अवस्था योग की स्थिति का परिचायक है। पतंजलि के योगसूत्र (प.यो.सू.) के संदर्भ में चित्त की एकाग्र अवस्था को रचनात्मक स्वास्थ्य के परिचायक के रूप में लिया जा सकता है। इसके अलावा पतंजलि योग सूत्र के अनुसार चित्त की निरूद्ध अवस्था को यौगिक स्वास्थ्य के रूप में भी लिया जा सकता है। तैत्तिरीय आरण्यक और लघु योग वासिष्ठ में भी स्वास्थ्य का समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इस यूनिट में यौगिक आहार का मूलाधार, समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए पंचकोष का महत्त्व तथा योग के माध्यम से प्रभावी तनाव–उपचार का आधार जैसे शीर्षकों को शामिल किया गया है।

3.11 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

1. आधुनिक तनाव के उपचार के लिए अन्य उपायों में योग को प्राथमिकता क्यों दी जाए?
2. किसी योग साधक को उसके योगाभ्यास में यौगिक आहार किस प्रकार सहायता करता है?
3. रचनात्मक स्वास्थ्य प्राप्त करने में मन की क्या भूमिका होती है?
4. 'लघु योग वासिष्ठ' के अनुसार रोग का मूल कारण क्या होता है?
5. हमारी दैहिक क्रियाओं को नियमित करने में संवेदी प्रतिक्रिया कैसे सहायता करती है?
6. योगाभ्यास द्वारा तनाव–उपचार कैसे संभव होता है?
7. हमारे शरीर में ऊर्जा गतिशीलता को बनाए रखने में यौगिक आहार कैसे सहायता करता है?
8. स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए यौगिक उपाय क्या है?

इकाई 4: प्रायोगिक अनुदेशन

संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 अधिगम उद्देश्य
4.3 नवशिक्षुओं के लिए योगाभ्यास हेतु सामान्य दिशा निर्देश
 4.3.1 षट्क्रियाओं के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश
 4.3.2 आसन के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश
 4.3.3 प्राणायाम के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश
 4.3.4 क्रिया योग के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश
 4.3.5 'ध्यान' के अभ्यास हेतु दिशा निर्देश
4.4. प्रायोगिक योग सत्र के आयोजन के लिए सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के निमित्त कुछ चुनिन्दा योगाभ्यास
 4.4.1 खड़े होकर
 4.4.2 बैठ कर
 4.4.3 अधोमुख होकर (प्रणत स्थिति)
 4.4.4 चित्त लेटकर
 4.4.5 क्रिया
 4.4.6 मुद्रा
 4.4.7 प्राणायाम
4.5 सारांश
4.6 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

4.1 प्रस्तावना

पिछली तीन इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् हम आशा करते हैं कि अब आप विद्या के रूप में योग की प्रकृति, योग के सामान्य सिद्धान्तों के साथ–साथ महर्षि पतंजलि और बहुत से हठ योगियों द्वारा लिखित प्रामाणिक पाठ्यपुस्तकों से भी अवगत हो गए हैं। आपने अलग–अलग आसन मुद्रा, क्रिया, बन्ध जैसी पद्धतियों का भी अध्ययन किया है। आपने गीता का एक श्लोक भी पढ़ा होगा जिसमें उल्लेख हैं:–

'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता 2.50)

इस श्लोक का आशय यह है कि यदि आपने योग पद्धति में प्रवीणता प्राप्त नहीं की है तो आपको साधक होने का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि योग सिद्धान्त को व्यवहार में अपनाया जाना आवश्यक है।

जैसा कि आप जानते हैं बी.एड. पाठ्यचर्या में योग पाठ्यक्रम चारों यूनिटों में है। पहली यूनिट में आपने योग के अभिप्राय इसकी अवधारणा और विभिन्न पद्धतियों के बारे में सीखा। योगाभ्यास में सामान्य तौर पर आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्राएं और षट्कर्म शामिल हैं। यद्यपि योग पद्धति में प्रत्येक प्रकार के मानव व्यक्तित्व के विकास, स्वस्थ तथा प्रसन्न जीवन व्यतीत करने और दीर्घायु होने से संबंधित विशिष्ट कार्य हैं तथापि योग शिक्षा के कुछ सामान्य कार्य भी हैं जिनका उद्देश्य मानव व्यक्तित्व को इस रूप में विकसित करना है कि यह संभावनाओं को यथार्थस्वरूप में परिणत कर सके और इस प्रकार स्वयं को जान सके। योगाभ्यास आत्माभिव्यक्ति और आत्म–बोध की लक्ष्य प्राप्ति के साधन हैं।

इकाई 4 को इस उद्देश्य से तैयार किया गया है कि आप विभिन्न योगाभ्यास और अन्य अवधारणाओं को समझ पाएं जो इन पद्धतियों के मूल में निहित है। इसलिए इस यूनिट में ज्यादातर अष्टांग और हठ योग के कौशल आधारित पहलुओं को शामिल किया गया है। इन अभ्यास से साधक आत्म–साक्षात्कार (समाधि) के पथ पर अग्रसर हो सकता है। इन अभ्यासों की प्रक्रिया और इनके विभिन्न चरणों को चित्रों के माध्यम से दर्शाया गया है जिनमें किसी तकनीक विशेष अथवा अभ्यास विशेष को निदर्शित किया गया है। आपसे अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक योगाभ्यास से सम्बन्धित चरणों को समझें और अपने खाली वक्त में विशेष रूप से संध्याकाल अथवा प्रातःकाल (नाश्ता करने से पूर्व अथवा जब आपका पेट खाली हो) इसका अभ्यास करें। तकनीक विशेष का वर्णन करते समय आपका ध्यान विशेष रूप से उन सभी लाभों की ओर दिलाया जाता है जो आपको मिलने की संभावना है। यदि कोई व्यक्ति योग की तकनीक का भली–भांति और नियमित रूप से अभ्यास करता है तो इससे प्राप्त होने वाले संभावित शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी फायदे को देखते हुए कतिपय तकनीक शामिल की गई हैं। उदाहरणार्थ, चिन्ता, कुण्ठा, तनाव, निराशा आदि से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अनुलोम–विलोम सर्वाधिक लाभकारी हो सकता है। यदि

कोई स्वस्थ व्यक्ति इन तकनीकों का अभ्यास करता है उस पुरूष या महिला में ऐसी सभी बीमारियों से लड़ने के लिए रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने की प्रबल संभावना रहती है।

इस इकाई के विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

4.2 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- खड़ी अवस्था, बैठकी अवस्था, प्रणत (पेट के बल लेटने की) अवस्था, और चित्त अवस्था में किए गए कम से कम तीन आसनों का नाम दे पाएंगे।
- समुचित सावधानी बरतते हुए ऐसे आसनों में से कम से कम एक आसन प्रदर्शित कर पाएंगे।
- विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का नाम बता पाएंगे और उनकी प्रक्रियात्मक पद्धति को निदर्शित कर पाएंगे।
- विभिन्न बंधों और मुद्राओं की पहचान कर पाएंगे।
- कम से कम एक बन्ध और एक मुद्रा निदर्शित कर पाएंगे।
- कपालभाति (एक तरह का षट्कर्म) को निदर्शित कर पाएंगे और इसके लाभ प्राप्त कर, वर्णन कर पाएंगे, और
- रेखांकित कर पाएंगे कि कौन सी योग पद्धति तनाव और चिन्ता से निवृत्ति में सर्वाधिक लाभप्रद है।

4.3 नवशिक्षुओं के लिए योगाभ्यास हेतु सामान्य दिशा निर्देश

क्रियाओं और आसनों के लिए सामान्य और विशिष्ट मार्गदर्शी सिद्धान्त निम्नानुसार हैं:

1. श्वसन यथासंभव सामान्य/स्वाभाविक होनी चाहिए। इसमें बदलाव लाने की आवश्यकता नहीं है। श्वास स्वाभाविक रूप से चलने दिया जाना चाहिए, केवल कपालभाति, अनुलोम–विलोम, उज्जायी जैसी क्रियाओं में जब विशिष्ट रूप से श्वास क्रिया में बदलाव लाने के लिए अनुदेश दिया जाए तभी इसमें अपेक्षित परिवर्तन लाया जाना चाहिए।

2. योगाभ्यास करने के क्रम में कोई प्रतिस्पर्धी अभिवृत्ति नहीं होनी चाहिए।

3. अपने भोजन, नींद और परिवेश को भी विनियमित करना महत्त्वपूर्ण है। भोजन ग्रहण करते समय आधा आमाशय जल और वायु के लिए खाली रखें। इससे बहुत से अप्रत्याशित रोगों से निवृत्ति मिलती है।

4. महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान अथवा गर्भावस्था की अग्रिम अवस्था में योगाभ्यास नहीं करना चाहिए।

5. यदि आप किसी प्रकार की समस्या से ग्रस्त हैं तो योग सत्र आरंभ होने से पूर्व अपने अनुदेशक को इस समस्या से अवगत कराना आपके हित में है।

6. योगाभ्यास स्वच्छ हवादार कमरे में और नीचे साफ–सुथरी दरी बिछाकर करें। दुहरे मुड़े हुए बड़े आकार के मोटे और मुलायम कंबल जो सफेद चादर से ढ़का हो, योगाभ्यास के लिए बिछाने का आदर्श आसन है।

7. शिक्षुओं के लिए आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध के निमित्त अपेक्षाएं:–

   किसी भी योग पद्धति के अभ्यास के लिए व्यक्ति को निम्नलिखित चीजों की आवश्यकता पड़ती है:–

लगभग 4×7 आकार की आरामदेह चटाई
एक शांत और स्वच्छ स्थल जहां स्वच्छ वायु उपलब्ध हो
एक पथ प्रदर्शक जो कोई योग शिक्षक अथवा योग अभ्यास में निपुण कोई व्यक्ति।

षट्कर्मों के लिए अपेक्षित चीजों का विवरण इस इकाई में दिया गया है।

4.3.1 षट्क्रियाओं के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश

हठ योग के पाठ में छह प्रक्षालन परिमार्जक प्रक्रियाओं का उल्लेख है। ये हैं–नेति, धौति, बस्ति, त्राटक, नौलि और कपालभाति जिसमें जल, वायु और शरीर के कतिपय अंगों की अवस्था में थोड़ा बदलाव करने की जरूरत पड़ती है।

1. ये क्रियाएं खाली पेट की जानी चाहिए। इसलिए इन्हें सामान्यतः प्रातःकाल किया जाना चाहिए।
2. वमन धौती और जल नेति के लिए नमकीन गुनगुने पानी का प्रयोग किया जाना चाहिए।

4.3.2 आसन के अभ्यास हेतु दिशा निर्देश

1. मोटे तौर पर आसनों के अभ्यास का क्रम इस प्रकार हैः– खड़े होकर, बैठ कर, प्रणत या अधोमुख, और चित्त लेट कर; उसके बाद श्वसन प्रक्रिया, बन्ध, मुद्रा, आराम और ध्यान।
2. आसन जल्दबाजी में अथवा किसी प्रकार का अनुचित बल प्रयोग कर और किसी दुराग्रह में नहीं करना चाहिए।
3. अंतिम अवस्था में क्रमिक रूप से धीरे–धीरे आएं और पूरे शरीर के भीतर अंतः चेतना के लिए आंखे मूंदकर इस अवस्था को बनाए रखें।
4. अपना श्वसन जारी रखते हुए दो अवस्थाओं के बीच के अन्तराल में आराम करें।
5. आसन में बने रहने का समय क्रमशः बढ़ाया जा सकता है।
6. अपनी शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखकर ही अभ्यास करें जिसमें आसन में बने रहने की सीमा और समय को बढ़ाने पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।
7. आरंभ में ही अंतिम अवस्था में पहुंचने का प्रयास न करें विशेष रूप से जब आपका शरीर इसके लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो।
8. अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार आसन में चरम अवस्था सहज रूप से बनाए रखना अधिक महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और लाभकारी है।
9. शरीर आपके आदेश को काफी देर तक क्रमिक और श्रमसाध्य प्रशिक्षण के पश्चात ही सुनना आरंभ करता है।
10. आसन की स्थिति में रहने पर आदर्श स्थिति यह है कि किसी प्रकार का हिलना– डुलना, कंपन या किसी तरह से असहजता नहीं होनी चाहिए।
11. आसन के दौरान स्वैच्छिक रूप से श्वसन क्रिया में बदलाव नहीं लाएं। जिस अवस्था में आप अभ्यास कर रहे हैं, उसी के अनुरूप शरीर श्वसन क्रिया से समायोजित हो जाएगा।
12. योगाभ्यास करने वाले को पूरी लगन से अनुदेशों का अनुकरण करना है और इष्टतम ध्यान से इसका अभ्यास करना है।
13. बिना अवरोध के ही इस अभ्यास को जारी रखते हुए कुछ एक दिनों बाद कोई भी व्यक्ति शरीर–मस्तिष्क पर योगाभ्यास के प्रभाव को अनुभव कर सकता है। यदि फिर भी किसी कारणवश

नियमितता बाधित होती है तो व्यक्ति को न्यूनतम समय को बनाए रखते हुए पुनः अभ्यास आरम्भ करना चाहिए।

14. योगाभ्यास में गैर–अनुकूलन और पुनः अनुकूलन की प्रक्रियाएं शामिल हैं और इसलिए आरंभ में व्यक्ति को थोड़ी थकान हो सकती है किन्तु कुछ ही दिनों के भीतर शरीर और मस्तिष्क इसके अनुरूप ढल जाता है और व्यक्ति को कुछ दिनों में पुनः कुशलता और हर्ष का अनुभव होने लगता है।

4.3.3 प्राणायाम के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश

1. प्राणायाम शरीर के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और नाजुक तंत्र अर्थात् श्वसन तंत्र और कार्डियोवैस्कूलर तंत्र से जुड़ा हुआ है।
2. प्राणायाम हठ योग की विशेष क्रिया है जिसमें हम अपने श्वसन से कार्य करते हैं, इसमें बदलाव लाते हैं, नियंत्रण करते हैं और इसे ही लंबे समय तक जारी रखते हैं। हठ प्रदीपिका में स्पष्ट किया गया है कि श्वसन क्रिया पर नियंत्रण के फलस्वरूप मस्तिष्क पर नियंत्रण स्थापित होता है। (हठ प्रदीपिका, पाठ–II, पद सं.0 2)
3. हठ–पाठों में सावधानी के तौर पर उल्लेख किया गया है कि जिस प्रकार बाघ, शेर या हाथी जैसे जंगली पशुओं पर धीरे–धीरे नियंत्रण किया जाता है, इसी तरह श्वसन क्रिया पर भी धीरे–धीरे नियंत्रण स्थापित किया जाना चाहिए। (हठ प्रदीपिका, पाठ–II, पद सं0 23)
4. सामान्यतः आसन के अभ्यास के बाद प्राणायाम किया जाना चाहिए।
5. आरंभ में व्यक्ति को श्वसन के सामान्य प्रकार से अवगत होना चाहिए।
6. अन्तःश्वसन और उच्छ्वसन को धीरे–धीरे लंबे समय तक बढ़ाया जाना चाहिए।
7. श्वसन के दौरान अपने उदर की गति पर ध्यान दें जो अन्तः श्वसन के दौरान थोड़ा फैलता है और उच्छ्वसन के दौरान थोड़ा भीतर जाता है।
8. परंपरागत रूप से प्राणायाम के तीन चरण हैं। इन्हें

   पूरक (प): नियंत्रित अन्तःश्वसन
   कुम्भक (क): नियंत्रित अवधारण
   रेचक (र): नियंत्रित उच्छ्वसन के नाम से जाना जाता है।

9. आरंभिक प्रक्रम में श्वसन के 1:2 के अनुपात को बनाए रखना सीखिए। इसका तात्पर्य है कि उच्द्वसन का समय अन्तःश्वसन के समय का दोगुना होना चाहिए।
10. 1:2 के अनुपात में अन्तःश्वसन और उच्छ्वसन के लंबे अभ्यास के पश्चात् व्यक्ति को किसी सुयोग्य शिक्षक के निर्देशन में श्वास के अवधारण की युक्ति सीखना चाहिए।
11. तथापि, प्राणायाम का अभ्यास करने के दौरान, उपर्युक्त आदर्श अनुपात तक पहुंचने में कोई शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।
12. परंपरा के अनुसार आदर्श अनुपात 1 (प): 4(क): 2(र) है; समय की इकाई को परंपरागत तौर पर 'मात्रा' कहा जाता है। कुम्भक का अभ्यास तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि 1:2 के अनुपात का पर्याप्त अभ्यास नहीं किया गया हो।
13. पूरक कुम्भक रेचक की आदर्श मात्रा निम्नानुसार हैः

20:80:40 (सर्वाधिक उच्च/सर्वोत्तम प्रकार के लिए)

16:64:32 (औसत किस्म के लिए)

12:48:24 (न्यूनतम किस्म के लिए)

14. कुंभक का अभ्यास तीन बन्ध, जिन्हें मूल बन्ध, जालन्धर बंध और उड्डीयान बंध के नाम से जाना जाता है; के प्रयोग द्वारा किया जाता है।

15. स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कुंभक आवश्यक नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण के अनुसार कुम्भक के बगैर प्राणायाम का अभ्यास 'सेफ्टी वाल्व खोलकर' प्राणायाम करना है।

16. यद्यपि आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने के इच्छुक व्यक्ति किसी सुयोग्य योग शिक्षक के मार्गनिर्देशन में कुम्भक का अभ्यास कर सकते हैं।

4.3.4 क्रिया योग के अभ्यास के लिए दिशा निर्देश

कैवल्यधाम परंपरा के अनुसार क्रिया योग में अनुलोम–विलोम प्राणायाम, ऊँकार जप और फिर गायत्री मंत्र का जाप 10 या 20 बार किया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऊँकार या अमीन या अमेन का जाप इस तरह से किया जाए कि वह धीमे स्वर में और आहिस्ता–आहिस्ता हो।

4.3.5 'ध्यान' के अभ्यास हेतु दिशा निर्देश

1. आसन और प्राणायाम के अभ्यास से काफी लम्बे समय तक ध्यान की अवस्था में बैठने की क्षमता विकसित होगी।

2. ध्यान के अभ्यास के लिए किसी शांत स्थल का चयन करें।

3. धीरे से अपने नेत्र बन्द करें ताकि आत्म चेतना में प्रवेश कर सकें।

4. प्रथम चरण में, ध्यान की अवस्था में आराम से बैठें जिसमें सिर, गर्दन और धड़ बिल्कुल सीधी होनी चाहिए। शरीर आगे की ओर या पीछे की दिशा में झुका नहीं होना चाहिए।

5. अपने श्वास के प्रवाह को बिल्कुल ध्यान से निरंतर वायु को स्पर्श करते हुए अपने नाक के दोनों ओर और नासिका से होकर जाते हुए अनुभव करें।

6. जब आप इस प्रक्रिया को कुछ समय तक निरन्तर जारी रखते हैं तो आप सम्पूर्ण शरीर में एक अमूर्त और निर्विशिष्ट चेतना का अनुभव करेंगे। किसी प्रकार की कठिनाई होने पर श्वसन को चेतना की अवस्था में वापस ले जाएं।

आरंभिक चरण मे, सामान्यतया श्वास का अवलोकन करना कठिन होता है यदि मन इधर–उधर भटक रहा हो तो ऐसी स्थिति में, अपराधबोध से ग्रस्त होने की आवश्यकता नहीं है। धीरे–धीरे किन्तु निरन्तर आप अपने श्वास–प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित कीजिए।

4.4 प्रायोगिक योग सत्र के लिए सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के निमित्त कुछ चुनिंदा योगाभ्यास

योगाभ्यास के कुछ संस्तुत प्रकार हैं जिसमें से व्यक्ति दस या बारह प्रमुख आसनों को चुन सकता है और कुछ अन्य प्रमुख अभ्यासों को दैनिक अभ्यास में जारी रख सकता है। चक्रानुक्रम में एक या दो अन्य अभ्यास को मुख्य अभ्यास में इस भांति जोड़ा जा सकता है कि अभ्यास का कुल समय नियमित करे। आमतौर पर, प्रतिदिन कुल 30 मिनट से 45 मिनट तक का समय होना चाहिए।

4.4.1 खड़े होकर

- ***ताडासन***
  स्रोतः यह एक पारंपरिक आसन है।

संक्षिप्त तकनीक

पैर की उंगुलियों को साथ जोड़कर सीधे खड़े हो जाएं, हाथों को शरीर के दोनों ओर रखें। दोनों हाथों को कंधे तक उठाएं और दोनों हाथों के बीच दूरी बनाए रखते हुए आकाश/छत की ओर ऊपर उठाएं। ऐड़ियों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और पैर की उंगुलियों के सहारे खड़े हो जाएं और फिर पूरे शरीर पर ऊपर की दिशा में हाथों को फैलाएं। धीरे–धीरे ऐसे वापस आएं कि दोनों हाथ के पीछे जाने से पहले ही एड़ियां जमीन पर आ जाएं।

विधि और निषेध

यह संतुलन बनाने वाला आसन है इसलिए इसे धीरे–धीरे करें। शुरू में पैरों को दूर–दूर रखा जा सकता है।

लाभ

इससे ऊँचाई बढ़ाने में मदद मिलने के साथ–साथ मेरुदण्ड भी लचीला हो जाता है।

तनाव कम करने मे यह बहुत ही प्रभावी होता है।

- ***वृक्षासन***
  स्रोतः घेरण्ड संहिता II:36

संक्षिप्त तकनीक

पैर की उंगुलियों को एक साथ जोड़कर सीधे खड़े हो जाएं और दोनों हाथों को शरीर के दोनों ओर रखें। एक पैर को घुटने पर मोड़ें और ऐड़ी को दूसरे पैर की जांघ पर रखें।

दोनों हाथों को मोड़ें और नमस्कार की मुद्रा अपनाएं।

कुछ समय तक अपने आराम का ध्यान रखते हुए इसी आसन में बने रहें और इस आसन से विलोमतः बाहर आएं।

विधि और निषेध

इसे एक–एक करके दोनों पैरों से अभ्यास में लाएं। यह संतुलन बनाने का आसन है, इसलिए इसे धीरे–धीरे करें। शुरू में अपनी आंखें नही मूंदे अन्यथा आपका संतुलन बिगड़ जाएगा।

लाभ

इससे शरीर और मस्तिष्क के संतुलन में सुधार होता है और शरीर का सामान्य संतुलन तंत्र भी उन्नत होता है।

- *पार्श्विक झुकाव वाला चक्रासन*

  स्रोतः पारंपरिक तौर पर चक्रासन पीछे की ओर झुकने वाला आसन है। स्वामी कुवलयानन्द ने इसका प्रवर्तन किया है ताकि इससे मेरुदण्ड में पार्श्विक झुकाव लाया जा सके।

संक्षिप्त तकनीक

दोनों पैरों से सीधे खड़े हो जाएं और हाथों को जांघ के दोनों ओर रखें। दाहिने हाथ को कंधे के स्तर तक ऊपर उठाएं, हथेली नीचे की दिशा में होनी चाहिए। हथेली की दिशा छत की ओर करें और हाथ को तब तक ऊपर उठाएं जब तक कि बांह कान तक नहीं पहुंच जाए। हाथ को थोड़ा फैलाएं और बाद में इसे दूसरी तरफ झुकाना आरंभ करें। कुछ समय तक इसी आसन में बने रहें और फिर मूल स्थिति में वापस आएं।

विधि और निषेध

एक तरफ झुकते समय दूसरी ओर बने रहें।

आगे की ओर या पीछे की ओर नहीं झुकें।

पीठ में किसी प्रकार की शिकायत होने पर यह आसन नहीं करें।

लाभ

इससे मेरुदण्ड लचीला हो जाता है और बिम्ब अपने स्थान पर बना रहता है।

इस आसन से मेरुदण्ड में सुनम्यता लाने में मदद मिलती है और इससे तंत्रिकाएं और बगल की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।

- *त्रिकोणासन*

स्रोतः अज्ञात किन्तु यह आसन परंपरा के माध्यम से आया है।

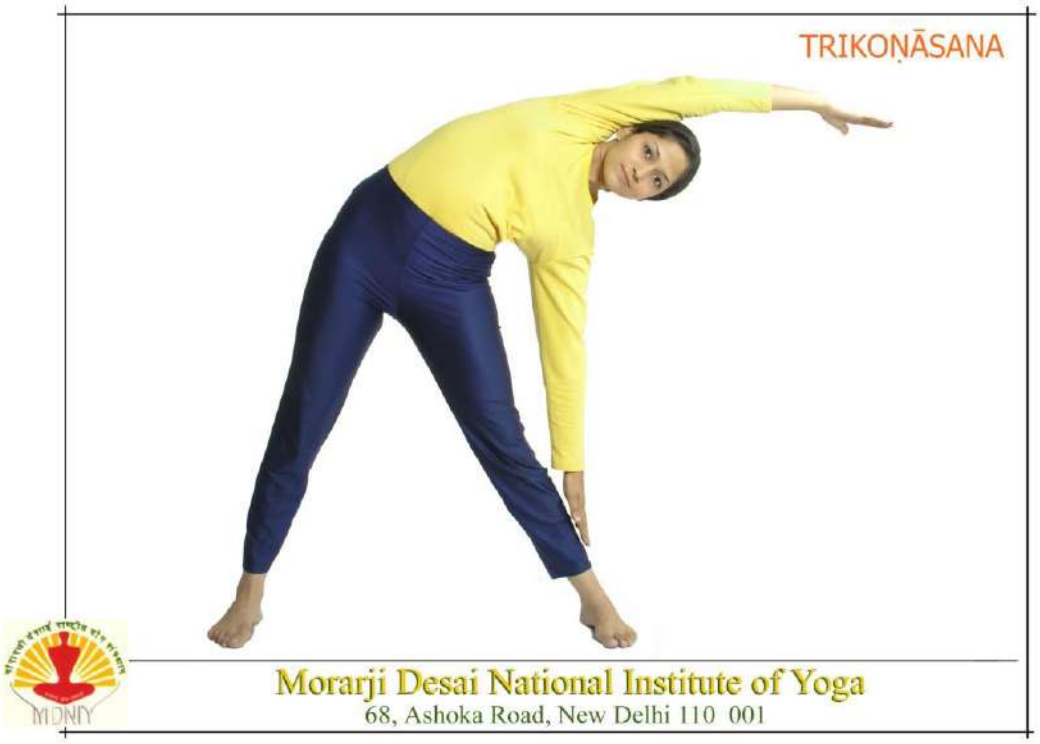

संक्षिप्त तकनीक

दोनों पैरों के बीच पर्याप्त दूरी रखें। दोनों भुजाओं को कंधे के स्तर तक बगल से समानान्तर रूप से उठाएं। श्वास छोड़ते समय धड़ को पार्श्विक रूप में मोड़ें और नीचे की दिशा में झुकते हुए एवं बायें हाथ से दाहिने पैर को स्पर्श करते हुए ऐसा करें। दाहिने हाथ को उठाए गए हाथ पर एक टक देखते हुए आकाश की दिशा में रखा जाना चाहिए।

विधि और निषेध

घुटने को न मोड़े।

लाभ

इससे कमर और नितम्ब के जोड़ों में लचीलापन बढ़ता है।

इससे साइटिका, पीठ दर्द, गर्दन का दर्द आदि के उपशमन में मदद मिलती है।

इससे उदर और श्रोणीय अंगों की मालिश में सहायता मिलती है।

- *उड्डीयान*

  स्रोतः हठप्रदीपिका III:56

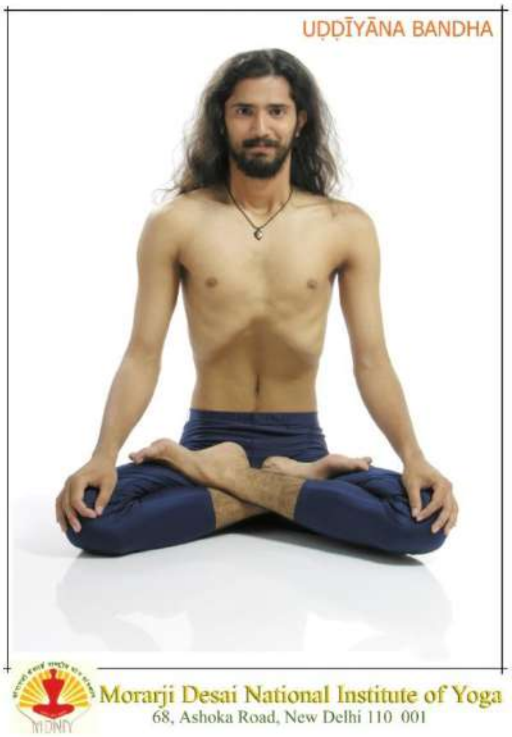

संक्षिप्त तकनीक

उड्डीयान डायाफ्राम बढ़ाने का एक योगाभ्यास है। इस क्रिया को उड्डीयान की संज्ञा दी जाती है क्योंकि इसकी मूल स्थिति से ऊपर उठकर डायफ्राम बनता है और योरैसिक गुहा में इसे बहुत ऊपर रखा जाता है।

अपने पैर को एक दूसरे से अलग रखकर ऐड़ी के सहारे सीधे खड़े हो जाएं। दोनों पैरों को थोड़ा बाहर की ओर मोड़ा जाता है और पैरों को थोड़ा घुटने के जोड़ की ओर झुकाया जाता है। हाथों को घुटने पर टिकाएं और आगे की ओर झुकें। मांसपेशियों को पूरी तरह ढीला छोड़ें और पूरे धड़ को आगे की ओर धक्का देकर बढ़ाएं।

विधि और निषेध

उड्डीयान का आसन हमेशा खाली पेट किया जाना चाहिए।

नए शिशु को एक दिन में तीन से अधिक बार यह आसन नहीं करना चाहिए।

चूंकि इस आसन से हृदय पर अधिक दबाव पड़ता है, दिल की बीमारी से पीडित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ

इससे मेरुदण्ड के स्तम्भ, पीठ की मांसपेशियों को बल मिलता है। पीठ की ओर यह खिंचाव के साथ–साथ पेट को श्वसन द्वारा आगे पीछे की तरफ किया जाता है।

4.4.2 बैठ कर

- ***दण्डासन***

  स्रोतः अज्ञात, किन्तु यह पारंपरिक आसन है।

संक्षिप्त तकनीक

सीधा बैठिएः दोनों पैर सामने फैलाइए, पैर की उंगुलियों को आगे की ओर रखिए। हथेलियों को नितम्बों के बाजू में जमीन पर रखिए उंगुलियां आगे की ओर होनी चाहिए। हाथों को सीधा फैलाइए और पीठ सीधी रखिए।

विधि और निषेध

घुटनों को सीधा रखिए।

पैर की मांसपेशियों को सिकोड़िए।

छाती को अधिक से अधिक फुलाइए।

आगे की ओर नहीं झुकिए।

कोहनियां नहीं झुकाइए।

लाभ

यह आसन उन लोगों के लिए लाभकारी है जिनके पेट में गैस के कारण पेट–फूलने जैसी संवेदनशीलता आती है।

इससे कमर के इर्द–गिर्द का मोटापा कम होता है।

इससे किडनी की कार्यक्षमता बढ़ती है।

इससे घुटने के पीछे की नस में लचक पैदा होती है।

- *अर्द्ध पद्मासन*

स्रोतः यह आसन परम्परा से आया है।

संक्षिप्त तकनीक

दण्डासन में बैठें। दाहिने पैर को, बाई जांघ पर रखें और एडी को पेट से सटाएँ। हाथों को ज्ञान मुद्रा/द्रोण मुद्रा में घुटनों पर रखें।

विधि और निषेध

अन्तिम स्थिति में मेरुदण्ड सीधा रहना चाहिए। पद्मासन से पूर्व अर्ध पद्मासन का अभ्यास करना चाहिए। अनुचित बल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पीठ दर्द की अवस्था में यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ

कटि क्षेत्र में रक्त संचार बढ़ता है। त्रिकोणीय आधार बनने के कारण ध्यान लगाने में आसानी होती है।

- *पर्वतासन*

  स्रोतः यह आसन परम्परा से आया है।

संक्षिप्त तकनीक

पद्मासन में बैठें। दोनों हाथों को ऊपर की ओर समान्तर अवस्था में उठाएं, अपनी हथेलियों को साथ मिलाएं और हाथों को ऊपर खींचें, ऐसा लगे कि आप अपने समस्त शरीर को ऊपर उठा रहे हैं।

इस मुद्रा को कुछ समय तक बनाए रखें और फिर अपनी पहली अवस्था में आ जाए।

विधि और निषेध

अपनी क्षमता से अधिक नहीं खींचे।

जो व्यक्ति पद्मासन लगा कर नहीं बैठ सकते, वे वज्रासन में भी कर सकते हैं।

लाभ

इससे मेरुदंड (रीढ़) को एक प्राकृतिक खिंचाव मिलता है और इसका अभ्यास स्पॉन्डिलाइटिस के विकार से बचा सकता है।

- *स्वस्तिकासन (शुभ आसन)*
  स्रोतः हठ प्रदीपिका 1:19.

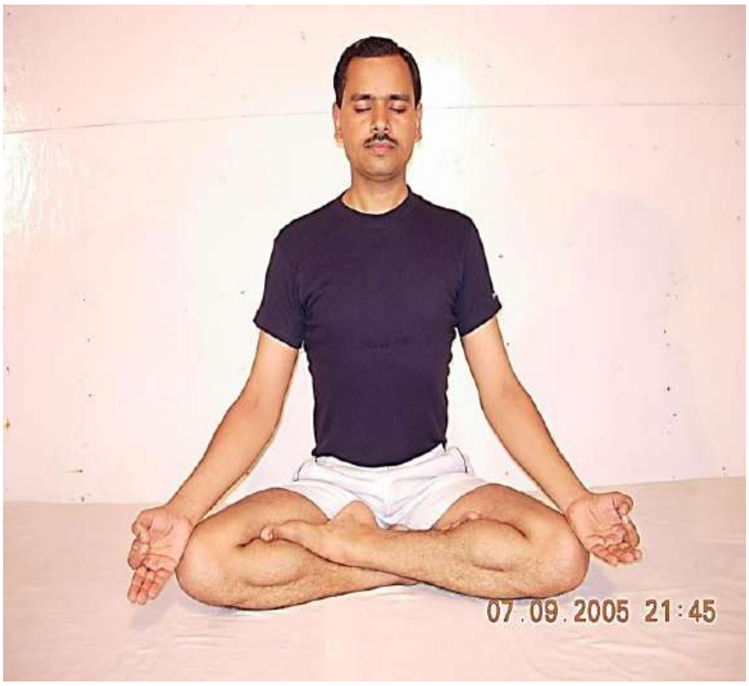

संक्षिप्त तकनीक

शरीर सीधा रखकर दंडासन में बैठें। दोनों पैरों को आगे की ओर फैलाएं; दोनों बांहों को शरीर के बाजू में रखें।

हथेलियां जमीन पर होनी चाहिए, अंगुलियां एक साथ आगे की ओर होनी चाहिए।

दाहिने पैर को घुटने तक मोड़ें और इसे बांये ऊरू मूल पर रखें और पैर के तलवे को भीतर रखें। बांयें पैर को घुटने पर मोड़ें और इसे दाहिनी जांघ की संधि पर रखें। दाहिने पैर की उंगुलियों को बायीं जांघ और पिण्डिका के बीच अन्तःस्थापित करें। पैर की बड़ी उंगुली को थोड़ा सा इस तरह रखें कि यह बाहर से दिखाई दें। बायें पैर की उगुलियां दाहिने पैर की पिण्डिका पर रहती हैं। ज्ञान मुद्रा में बैठें। अपनी सुविधा और आराम के अनुसार इस आसन में बने रहें और तब विपरीत ढंग से इस आसन को छोड़ें। (बायें पैर के साथ भी ऐसा ही करें)।

विधि और निषेध

अंतिम आसन में किसी दिशा में नहीं झुकें। टखने की संधियों को इस प्रकार नहीं मोड़ें कि यह एक दूसरे के ऊपर आ जाएं।

लाभ

यह ध्यान का आसन है जिसे मस्तिष्क और सांस की एकाग्रता से लंबे समय तक बनाए रखा जाना चाहिए। यह आसन प्राणायाम के लिए भी उत्तम है। टखने के जोड़ स्वस्थ और लचीले हो जाते हैं। इस आसन से त्रिकास्थि में बहुत अधिक मात्रा में रक्त का संचार होता है जिससे इसका संवर्धन होता है।

- ***योग मुद्रा***

स्रोतः अज्ञात किन्तु यह पारंपरिक आसन है।

संक्षिप्त तकनीक

पद्मासन में बैठें, अपनी बांह को शरीर के पिछले भाग में लाएं। बायीं हथेली से दाहिनी कलाई को पकड़ें, अब नितम्ब स्थल से आगे की दिशा में मुडें, सिर और धड़ को नीचे की ओर तब तक झुकाएं जब तक कि यह जमीन को स्पर्श न कर ले।

विधि और निषेध

मेरुदण्ड के स्तम्भ को झटके नहीं दें।

नितम्ब को जमीन से ऊपर उठने न दें।

लाभ

त्रिकास्थि से जुड़ी नसें और संपूर्ण तंत्रिका तंत्र जाग्रत हो जाते हैं। विशेष रूप से पृष्ठ भागीय सर्वाइकल क्षेत्र में तनाव मुक्ति के साथ–साथ मेरुदण्ड के फैलाव के कारण मेरुदण्ड सशक्त होता है और इसके फलस्वरूप मेरुदण्ड के नसें सक्रिय हो जाती हैं।

- *वज्रासन*

  स्रोतः घेरण्ड संहिता–II:12

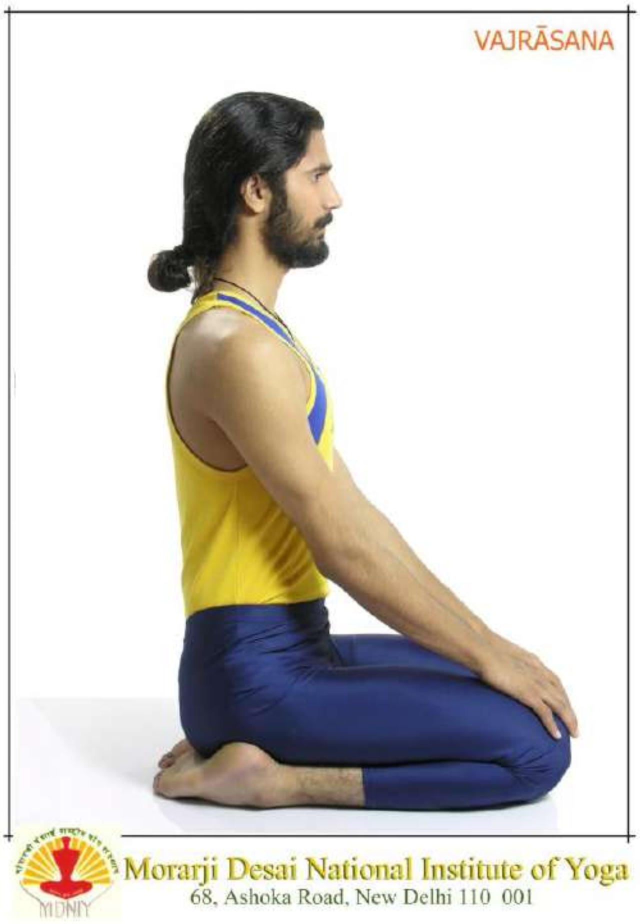

संक्षिप्त तकनीक

दण्डासन में लंबे समय तक बैठें। घुटने पर दाहिने पैर को मोड़ें और इसे दाहिने नितम्ब के नीचे रखें, पैर की उंगुलियां भीतर की ओर होनी चाहिए। इसी प्रकार, बायें पैर को मोड़ें और इसे बायें नितम्ब पर रखें, दोनों हाथ घुटनों पर रखें।

विधि और निषेध

ऐड़ियां बाहर की ओर रहेंगी जबकि पैर की उंगुलियां भीतर की तरफ रहेंगी।

ऐड़ियों पर नहीं बैठें।

यदि किसी के घुटने में और टखनों के जोड़ में ऐंठन आ रही हो तो इसका अभ्यास नहीं करें।

लाभ

इस आसन से जांघ और पिण्डिका की मांसपेशियां मजबूत होती है।

भोजनोपरांत वज्रासन में बैठने से पाचन–क्रिया बेहतर हो जाती है।

- *योग मुद्रासन*

  स्रोतः घेरण्ड संहिता–II:12

संक्षिप्त तकनीक

वज्रासन में बैठें, हाथ मोड़ें और इसे नाभि क्षेत्र के बगल में रखें।

उच्छ्वसन के समय नितम्ब के जोड़ से आगे की ओर झुकें जब तक कि कपाल जमीन को स्पर्श न कर लें।

विधि और निषेध

नितम्बों को उठने नहीं दें।

पेट में दर्द होने पर यह आसन नहीं करें।

लाभ

इस आसन से जांघ की मांसपेशियां और पिण्डिका की मांसपेशियां मजबूत होती हैं। वज्रासन, श्रोणी की मांसपेशियां इस आसन से सम्पुष्ट होती हैं।

इस आसन से नीचे के अंगों में गठिया, संधिवात और हड्डियों के जोड़ों में दर्द आदि की आशंका समाप्त हो जाती है।

इस आसन से अन्तःस्रावी ग्रंथियां अर्थात् अधिवृक्क ग्रंथि, अग्नाशय और अण्डाशय की भी सम्पुष्टि होती है।

- *शशांकासन (खरगोश मुद्रा)*
  स्रोतः अज्ञात किन्तु यह प्राचीन परंपरा से संबद्ध है।

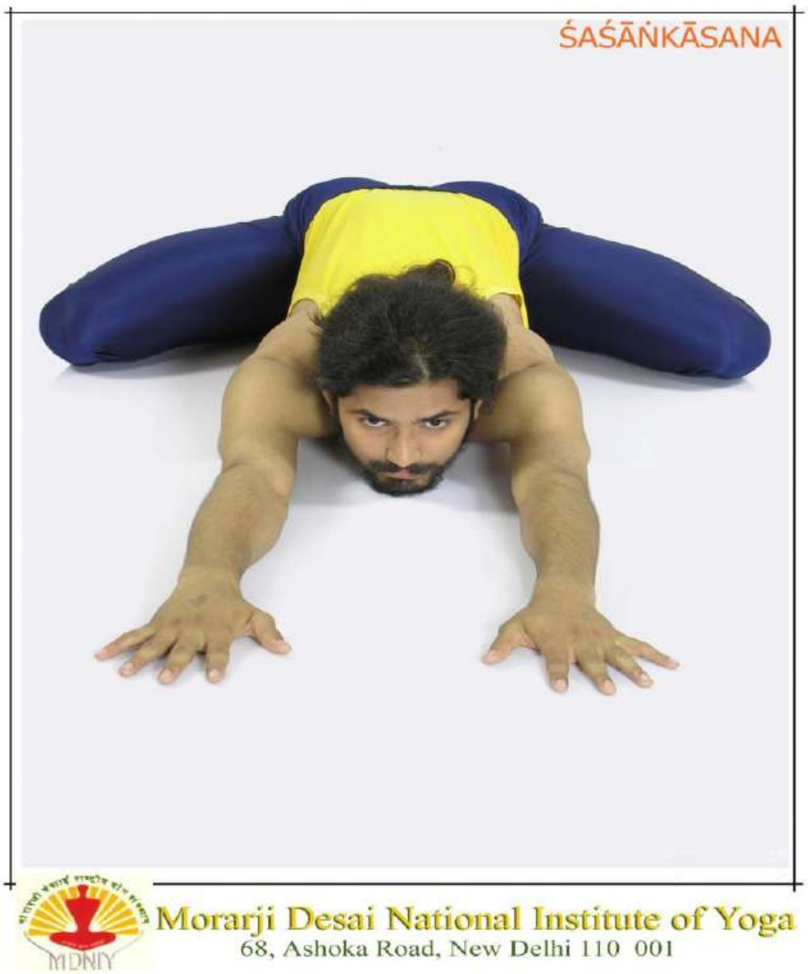

संक्षिप्त तकनीक

वज्रासन में बैठें, जबकि धीरे–धीरे श्वास भीतर लेते हुए अपनी बाहों को सिर के ऊपर उठाएं। तत्पश्चात् धीरे–धीरे श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर झुकें और हथेलियों को जमीन पर फैलाएं साथ ही पेट को जांघ पर दबाकर रखें। इस आसन को विलोमतः बिल्कुल सीधे होकर छोड़ें।

विधि और निषेध

नितम्ब को ऊपर नहीं उठाएं।

लाभ

पाचन तंत्र और आंत्र से जुड़े अंगों के लिए यह सर्वोत्कृष्ट आसन है।

इससे पैर, जांघ और पीठ की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।

इससे मेरुदण्ड की नसें भी स्फूर्त होती हैं।

- *मंडूकासन*
  स्रोतः घेरण्ड संहिता–II: 34

संक्षिप्त तकनीक

इस आसन का नाम करण एक मेंडक की मुद्रा के आधार पर किया गया है। इसमें साधक की टांगों की अवस्था एक मेंडक की पिछली टांगों की भांति होती है।

वज्रासन में बैठें। घुटनों को इतना फैलाइए (जैसा आकृति में दिया गया है) ताकि पैरों का पृष्ठीय भाग जमीन को छुए। दोनों पैरों की उंगलियां एक दूसरे के आमने–सामने हों और आपस में छूएं। सिर, गर्दन और धड़ बिल्कुल सीधे हों और हाथ अपनी–अपनी ओर के घुटनों पर रखे हों। आंखे बंद भी रख सकते हो और खुली भी।

विधि और निषेध

यदि श्रोणीय (पैल्विक) जोड़ों में कड़ापन या दुर्नम्यता हो तो अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ

यह आसन घुटनों के और टखनों के जोड़ों पर कार्य करता है जिससे उनका समन्वय ठीक रहता है और गति में लचीलापन आता है। इसके अभ्यास से उन व्यक्तियों को लाभ होता है जिन्हें बदहजमी, मधुमेह तथा पाचन संबंधी विकार होते हों।

- *उत्तान मंडूकासन*
  स्रोतः घेरण्ड संहिता– II: 35

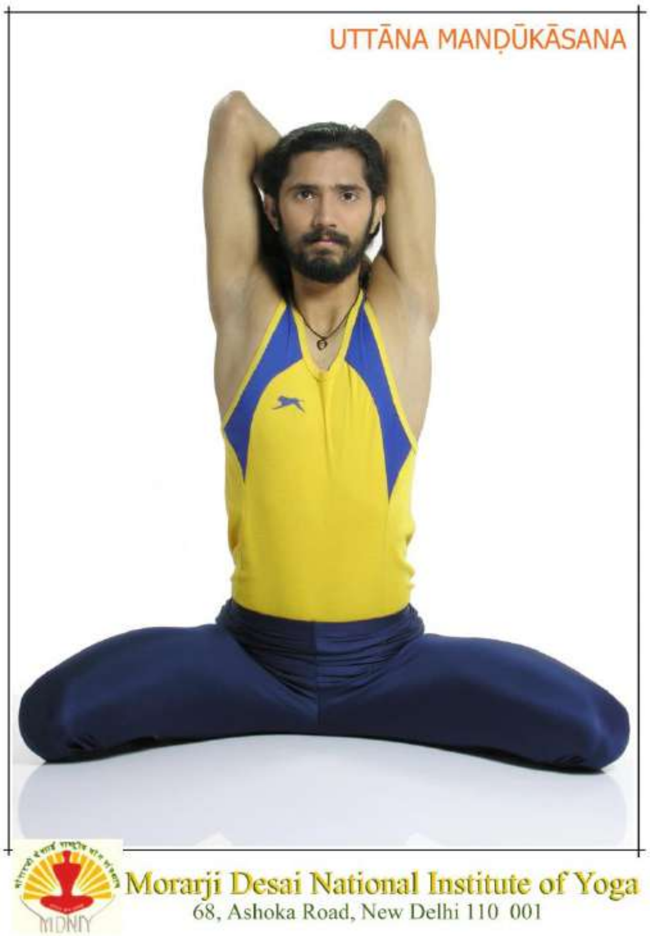

संक्षिप्त तकनीक

मंडूकासन में आकर, सिर को दोनों कोहनियों से पकड़ें। मेंढ़क की भांति ऊपर उठी हुई इस स्थिति को उत्तान मंडूकासन की संज्ञा दी जाती है। कोहनियों से सिर के घिरे होने से यह मेंढक के सिर के सदृश्य दिखाई पड़ता है।

विधि और निषेध

पीठ के दर्द, हृदय संबंधी समस्याएं और पैर के जोड़ों में दर्द की समस्या से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ

इससे कब्ज, मधुमेह और पाचन संबंधी समस्याओं से पीड़ित व्यक्तियों को लाभ होता है।

इससे फेफड़े की क्षमता बढ़ती है, छाती के दोनों ओर और उदर में रक्त संचार होता है और इससे उदर एवं कंधे की मांसपेशियां भी मजबूत होती हैं। इससे गृध्रसी अर्थात् साइटिका के रोगियों की चिकित्सीय स्थिति में सुधार होता है।

- *वक्रासन*
  स्रोतः इस आसन के प्रादुर्भाव का श्रेय स्वामी कुवलयानन्द को जाता है। यह मत्स्येन्द्रासन का सरल स्वरूप है।

संक्षिप्त तकनीक

लंबे समय तक बैठने की मुद्रा में आएं। हाथों को शरीर के बाजू में रखें और हथेलियां जमीन पर रखें। दायां पैर मोड़कर घुटने तक लाएं और बायें घुटने के बगल में तलवे को जमीन पर रखें। मुड़ा हुआ घुटना आगे की ओर होना चाहिए। दाहिने हाथ को पीछे की ओर ले जाएं और हथेली को मेरुदण्ड के सबसे निचले हिस्से में रखें। बायें हाथ को दाहिने घुटने की ओर ले जाएं और हथेली को जमीन पर रखें। दायां घुटना बांयीं ओर ले जाकर व्यक्ति को सिर पीछे की तरफ मोड़ना चाहिए। कुछ समय तक इसी अवस्था में बने रहें और विपरीत क्रम में इस आसन से बाहर आएं। दूसरी तरफ से भी ऐसा ही करें।

विधि और निषेध

पीठ की ओर रखा जाने वाला हाथ उस ओर का होना चाहिए जहां पैर को मोड़ा जाना है।

लाभ

इस आसन से कब्ज, उदर–वायु की शिकायत दूर होती है। मेरुदण्ड की कठोरता कम होती है और इसमें और अधिक लचीलापन आता है।

- *मार्जारासन (बिल्ली मुद्रा)*
  स्रोतः अज्ञात, किन्तु यह पारंपरिक आसन है।

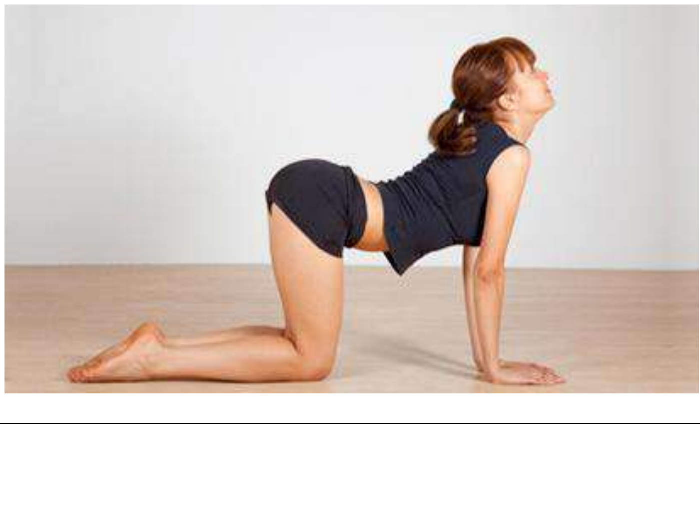

संक्षिप्त तकनीक

वज्रासन में बैठें। धीरे–धीरे घुटनों के बल खड़े हों, आगे की ओर झुकें और हथेलियों को सीधा जमीन पर रखें। श्वास लेते समय सिर को ऊपर उठाएं और मेरुदण्ड को नीचे करें। कुछ देर तक इसी अवस्था में रहें। इस अवस्था का त्याग करते समय सिर को नीचे झुकाएं और मेरुदण्ड को ऊपर की दिशा में ले जाएं।

विधि और निषेध

दोनों हाथ घुटने की सीध में होने चाहिए। कोहनियों पर बाहों को नहीं मोड़ें।

लाभ

इस आसन से मेरुदण्ड के लचीलेपन में सुधार होता है, पीठ को मजबूती मिलती है और उदर की मांसपेशियां भी पुष्ट होती हैं।

4.4.3 अधोमुख होकर (प्रणत अवस्था)

- ***मकरासन***
  स्रोत: घेरण्ड संहिता II: 40.

संक्षिप्त तकनीक

प्रणव अवस्था में पेट के बल लेट जाएं। अपने पैरों को बिल्कुल सामान्य दूरी पर रखें जिसकी एड़ियां भीतर हों और पैर की अंगुलियां बाहर की तरफ हों। बांये हाथ को कोहनियों पर और दाहिने कंधे पर और दाहिने हाथ को बांये कंधे पर रखें। सिर को बाहों के कुशन (cushion) पर रखें।

विधि और निषेध

यदि कोहनियों को एक दूसरे पर रखने में कठिनाई हो रही हो तो इन्हें थोड़ा अलग–अलग रखें। मोटापे की शिकायत होने पर या हृदय संबंधी परेशानी होने पर इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

लाभ

परंपरागत रूप से यह आराम प्रदान करने वाली अवस्था है।

यह प्रायः सभी मानसिक–शारीरिक कष्ट में लाभप्रद है।

यह श्वसनांगों के साथ–साथ पाचन अंगों के लिए भी लाभप्रद है।

- *निरालंबासन*

  स्रोतः यह भुजंग आसन का संशोधित सरल स्वरूप है।

संक्षिप्त तकनीक

पेट के बल सीधा लेट जाएं अपने पैर की अंगुलियों और ऐड़ी को एक साथ रखें और कपाल को जमीन पर रखें। अब अपने सिर को इस तरह से ऊपर उठाएं कि यह इस प्रक्रिया में धीरे–धीरे पीछे की दिशा में झुक जाए। अब कोहनियों पर अपनी बांहों को झुकाएं और कपाल के नीचे सहारे के लिए हथेलियां रखें। गर्दन और कंधे ऊपर उठ जाते हैं। पूरे शरीर के प्रति सजग रहें। कोहनियों को निरन्तर समायोजित करते रहें ताकि खिंचाव गर्दन और पीठ के निचले हिस्से में समान रूप से बंट जाए।

विधि और निषेध

आराम से सांस लें और सुगमतापूर्वक अपनी आंखें मूंद लें।

बिना किसी जबरदस्ती किए स्वाभाविक क्षमता के अनुसार आसन का अभ्यास करें। पीठ दर्द और कमर दर्द होने की दशा में इस आसन का अभ्यास नहीं करें।

लाभ

इससे गर्दन और जबड़े के दर्द से निजात मिलती है। इस आसन में शरीर को आराम मिलता है और स्पाइन और गर्दन सुनम्य एवं स्वस्थ रहता है। यह कटि प्रदेश की स्पोंडिलाइटिस में भी उपयोगी है। इसमें रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) की सुनम्यता भी कायम रहती है और स्पाइन से जुड़ी नसों का व्यायाम होता है। साइटिका में इससे बहुत अधिक मदद मिलती है।

दमा में यह बहुत लाभकारी है।

इससे शरीर और मस्तिष्क को अधिक से अधिक आराम मिलता है।

- ***अर्द्ध–शलभासन***

  स्रोतः यह शलभासन का संशोधित रूप और सरल स्वरूप है।

संक्षिप्त तकनीक

जमीन पर प्रणत अवस्था में लेट जाएं, हाथों को शरीर के बगल में रखें, ठुड्डी जमीन से स्पर्श कर रहा हो। शरीर के बगल में मुट्ठी बांध लें अथवा इन्हें कमर के निचले हिस्से से लगाकर जमीन पर दबाएं। अब अपना एक पैर ऊपर की ओर उठाएं। कुछ सेकण्ड तक इस स्थिति में बने रहने के बाद धीरे–धीरे ऊपर उठाएं हुए पैर को जमीन पर रखें और आराम करें। दूसरे पैर के साथ भी इसी क्रिया को दोहराएं।

पूरी सांस भीतर लेकर इस आसन में आया जा सकता है और तब मकरासन में आराम की अवस्था में आते समय इसे छोड़ें। फेफड़े की क्षमता बढ़ाने के इच्छुक व्यक्ति ऐसा कर सकते हैं।

विधि और निषेध

यद्यपि इस अभ्यास में सांस लेने की क्रिया स्वाभाविक होती है। पैरों को उठाने के क्रम में श्रोणी प्रदेश को नहीं झुकाएं।

- ***शलभासन***

  स्रोतः घेरण्ड संहिता II और 39.

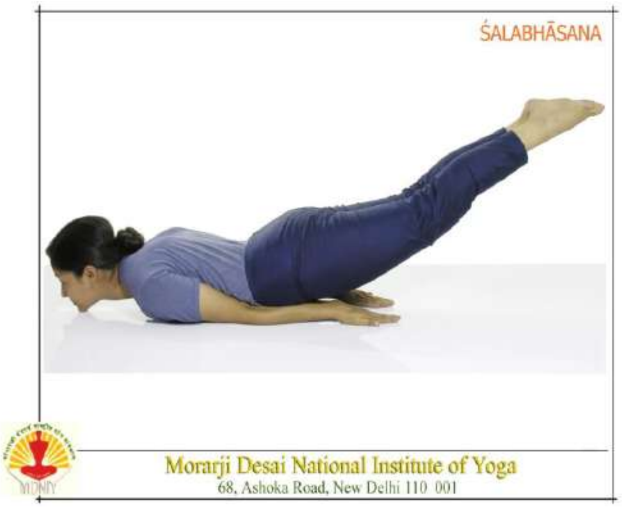

संक्षिप्त तकनीक

पारंपरिक रूप से इस आसन का अभ्यास निम्नलिखित रूप में किया जाता हैः–

हथेलियों को छाती के दोनों तरफ रखिए, दोनों पैरों को एक साथ उठाइए, साथ ही सिर को भी जमीन से उठाइए।

अथवा

ठुड्डी को जमीन पर रखकर और धीरे से मुट्ठियां बन्द करके प्रणत अवस्था में लेट जाएं। अपने दोनों पैर धीरे–धीरे जमीन से 10 से 15 इंच ऊपर तक उठाएं।

विधि और निषेध

आरंभ में आधी बन्द मुट्ठी को जांघों के नीचे रखा जा सकता है ताकि पैरों को उठाने में सुविधा हो। घुटनों पर पैर को नहीं मोड़ें।

लाभ

इससे नीचे उदर की मांसपेशियां मजबूत होती हैं। यह पाचन क्रिया में लाभकारी है और इससे कब्जियत दूर होता है।

4.4.4 चित्त लेटकर

- ***शवासन (मृतक की अवस्था)***

  स्रोतः *हठप्रदीपिका 1:32 और घेरण्ड संहिता* II: 19

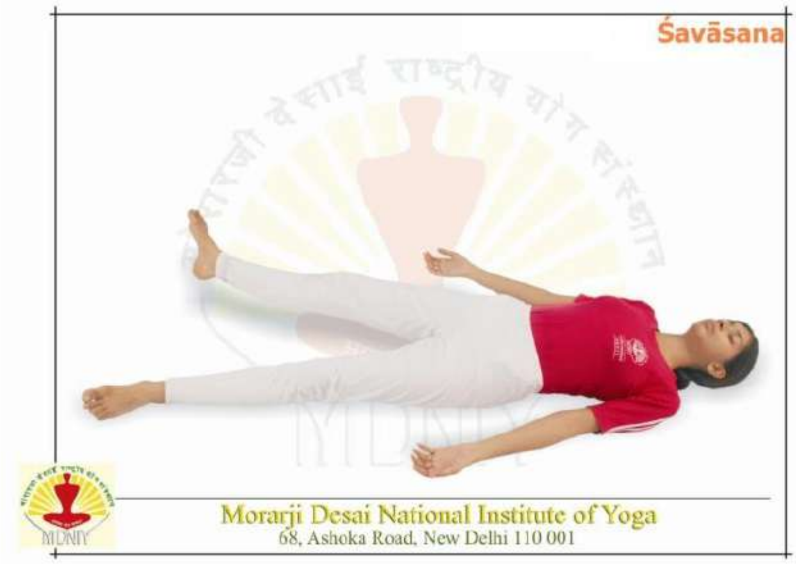

संक्षिप्त तकनीक

जमीन पर ऊपर की ओर मुंह करके सीधे लेटकर दोनों पैर को बिल्कुल सही दूरी पर फैलाकर और हाथों को शरीर से लगभग छह ईंच की दूरी पर रखकर, हथेलियों को ऊपर, की ओर उठाकर, अंगुलियों को स्वाभाविक रूप से मोड़कर और आंखें बंदकर।

विधि और निषेध

शरीर के किसी भी अंग में कोई तनाव नहीं, इसलिए शरीर के पूरे ढांचे को ढ़ीला करें। प्राकृतिक श्वसन की चेतना को जारी रखें। उदर संचालन पर ध्यान देते हुए और नासिका से होकर अन्दर जाने वाली वायु के स्पर्श से होने वाली संवेदना पर भी निरंतर ध्यान देते हुए श्वास की प्रक्रिया को जितना अधिक स्वाभाविक हो सके, स्वाभाविक होने दो।

लाभ

यह सभी शारीरिक और मानसिक स्थिति, चिन्ता, विकार, नींद नहीं आने की स्थिति और मानसिक एवं शारीरिक थकान को दूर करने में लाभप्रद हैं।

- **(चित्त लेटकर) ताडासन**

संक्षिप्त तकनीक

पीठ के बल इस प्रकार लेटें कि पैर की अंगुलियां और ऐड़ी एक साथ हो और दोनों हाथ जांघ पर हों। धीरे–धीरे दोनों हाथों की हथेलियों को भीतर की ओर रखते हुए ऊपर उठाते हुए सिर के पीछे की ओर ले जाएं और उंगलियों को आपस में जोड़ें और धीरे–धीरे शरीर को सहजता के साथ खींचे।

विधि और निषेध

जल्दबाजी नहीं करें।
झटके से बचें। शरीर के अंगों को फैलाने का कार्य बिल्कुल निष्क्रिय होकर करें।

लाभ

इससे उँचाई बढ़ती है और तंत्रिका में सुधार होता है क्योंकि मेरुदंड सुनम्य हो जाता है। इससे श्वसन क्रिया में सुधार आता है।

पीठ का दर्द दूर होता है।

पैर की मांसपेशियां सशक्त होती हैं और घुटनों, टखनों और जांघों को मजबूती मिलती है।

- ***मेरुदण्डासन (मकर)***
  स्रोतः अज्ञात किन्तु यह पारंपरिक अवस्था है।

अभ्यास 1

अभ्यास 2

अभ्यास 3

संक्षिप्त तकनीक

अभ्यास 1

दोनों पैरों को एक साथ जोड़ें, हथेलियां जमीन पर रखें हाथों को शरीर के बगल में रखें।

दोनों हाथों को कंधों तक फैलाएं। बांयी ऐड़ी को दाहिने पैर के बड़े अंगूठे और उसके पास वाली दूसरी उंगली के बीच रखें। दोनों पैरों को दाहिनी ओर लाएं जब तक बांये पैर की उंगली जमीन को स्पर्श नहीं कर जाए। सिर और गर्दन को बांयी ओर रखें। इसी प्रक्रिया को दांयी तरफ भी दोहराएं।

अभ्यास 2

दोनों हाथों को कंधे तक फैलाएं। बांया पैर मोड़ें और टखने के जोड़ को घुटने तक ले जाएं। बांये पैर को तब तक दाहिनी ओर ले जाएं जब तक कि बायां घुटना जमीन को नहीं स्पर्श कर जाए। सिर और गर्दन को बांयी ओर ले जाएं। इसे दूसरी तरफ भी दोहराएं।

अभ्यास 3

दोनों हाथों को कंधे तक फैलाएं। बायां पैर जहां तक संभव हो, 90 डिग्री तक उठाएं और इसे दाहिनी तरफ ले जाएं। इसके साथ–साथ सिर और गर्दन को बायीं ओर ले जाएं। इसे दूसरी तरफ भी दोहराएं।

विधि और निषेध

पैर की अंगुलियों के मामले में दोनों पैरों को एक साथ मिलाकर उठाना चाहिए घुटने बिल्कुल अगल बगल में होने चाहिए।

पीठ में अकड़न होने पर या पीठ में किसी प्रकार की तकलीफ होने पर इसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए।

लाभ

यह रीढ़ की हड्डी के लचीलेपन को कायम रखने जिससे स्पाइन के निचले भाग वाले क्षेत्र में स्पोंडिलाइटिस जैसी व्याधियों को दूर करने में लाभदायक है।

यह व्यवस्था सबसे निचले और सबसे ऊपरी छोर के अंगों को सशक्त बनाने के लिए भी लाभप्रद है।

- *उत्तानपादासन*

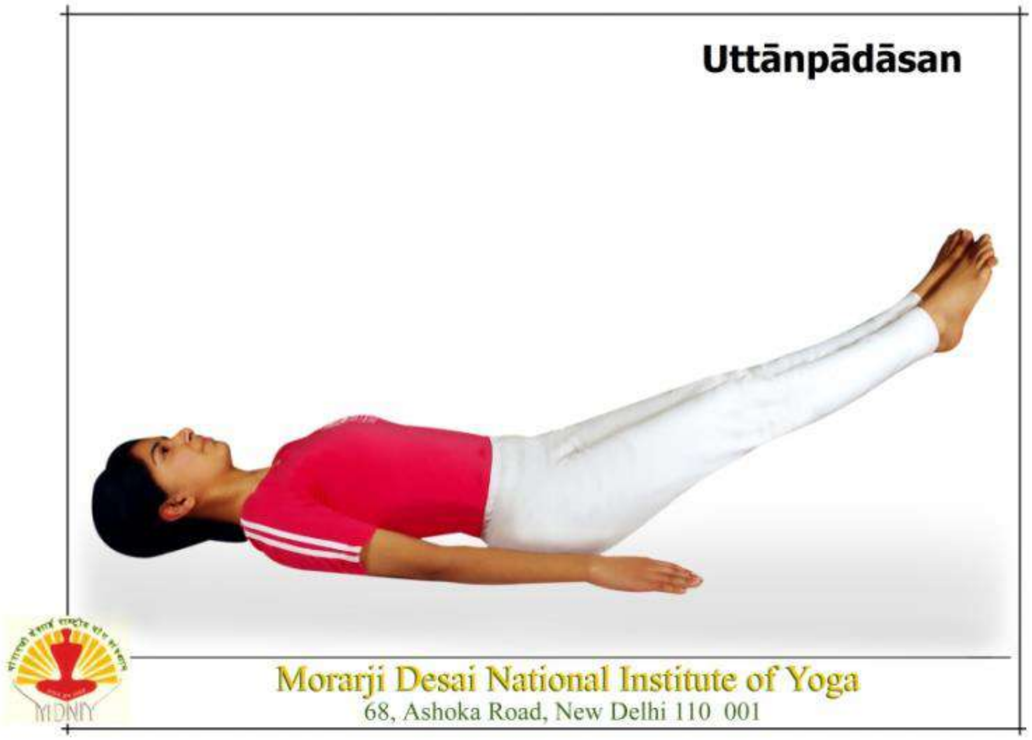

स्रोतः अज्ञात किन्तु यह पारंपरिक अवस्था है। इस अवस्था को विशिष्ट अवस्थाएं यथा (अर्द्धासन, विपरीतकरणी, सर्वांगासन और हलासन) के पूर्व की तैयारी वाले अभ्यास के रूप में देखा जाता है।

संक्षिप्त तकनीक

दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर चित्त चित्त लेट जाएं। हाथों को शरीर के बगल में करें, हथेलियों को जमीन पर रखें, बायें पैर को धीरे–धीरे 60 डिग्री कोण तक उठाएं और कुछ देर तक इसी अवस्था में बने रहें। इस अवस्था से धीरे–धीरे बाहर आएं और पूर्व की स्थिति में पहुंच जाएं। दाहिने पैर के साथ भी इसी तरह करें। फिर दोनों पैरों को एक साथ उठाकर करें।

विधि और निषेध

इससे उदर के निचले हिस्से में दबाव और सिकुड़न उत्पन्न होती है, इसलिए ध्यानपूर्वक अभ्यास करें। अपने पैरों को उपर की दिशा में उठाते समय इन्हें घुटनों के पास नहीं मोड़ें।

लाभ

यह कब्ज, अपच, दिमागी कमजोरी और मधुमेह में लाभकारी है। इससे उदर की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।

अर्द्ध हलासन

उत्तानपदासन की ही तरह दोनों पैरों को उठाएं और घुटने पर झुकाएं बगैर 90 डिग्री तक पहुंचे, साथ ही 45 डिग्री और 60 डिग्री के कोण पर रूकते हुए इसे बनाए रखिए। 90 डिग्री तक पहुंचते हुए इस अवस्था में कुछ देर बने रहें और धीरे–धीरे उत्तानपादासन में वापस आएं।

विधि और निषेध

90 डिग्री तक पहुंचें लेकिन अपने शरीर की सीमा से परे नहीं जाएं। इसे विपरीतकर्णी, सर्वांगासन और हलासन से पहले अभ्यास किया जाना चाहिए।

लाभ

इससे विपरीतकरणी आदि में मदद मिलती है। इससे पाचन तंत्र में सुधार होता है और कब्ज दूर होता है।

- ***सेतुबन्धासन***

  स्रोतः बिल्कुल ठीक–ठीक नहीं ज्ञात है।

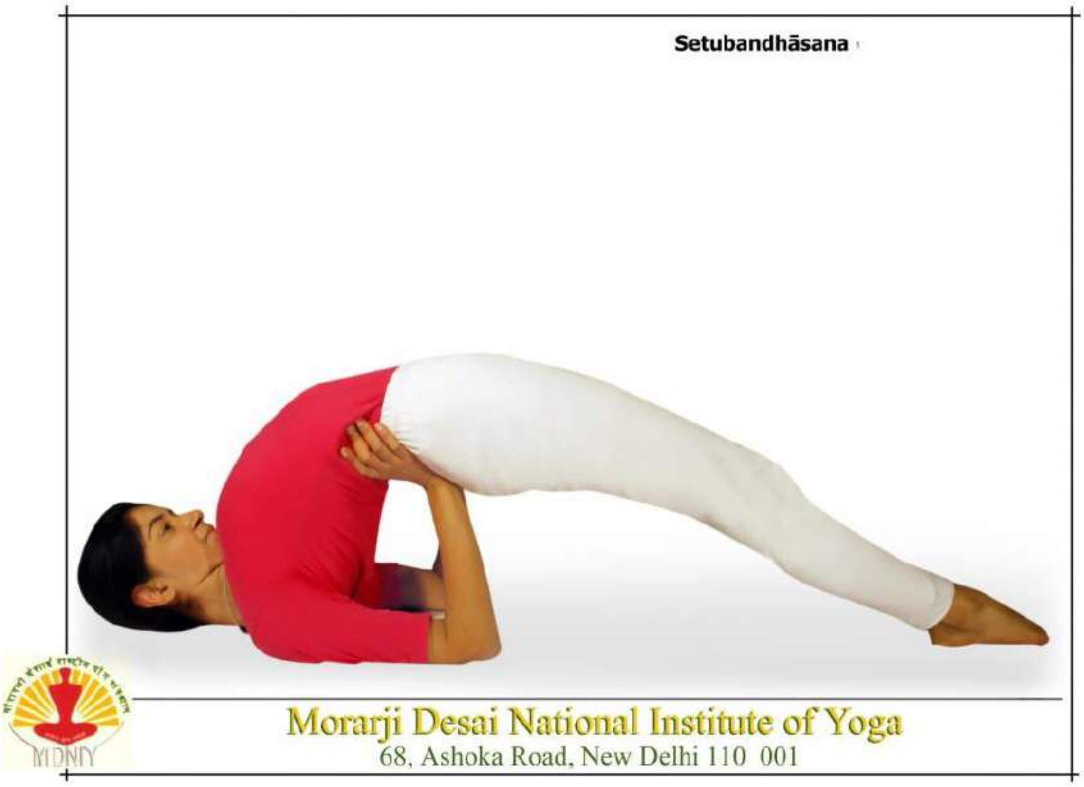

संक्षिप्त तकनीक

दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर चित्त लेट जाएं और अपनी बाहों को शरीर के बगल में रखें हथेली जमीन पर रखें। घुटने के पास दोनों पैरों को मोड़ें, पैर के तलवे को जमीन पर रखें और ऐड़ियां नितम्ब के नजदीक होनी चाहिए। दोनों बाहों को ऐड़ियों के पास रखें और दोनों टखनों को कसकर पकड़े रहें। जहां तक संभव हो, कमर और जांघ को ऊपर की ओर उठाएं। गर्दन और कंधे को कसकर जमीन पर रखें। अपनी सुविधा के अनुसार इस अवस्था में बने रहें और इस अवस्था को धीरे–धीरे छोड़ें।

विधि और निषेध

यदि पीठ में कोई समस्या हो तो इसका अभ्यास नहीं करें।

लाभ

इससे कमर और जांघ की मांसपेशियों के रोग को दूर करने में मदद मिलती है।

यह पीठ के नीचे और उदर की मांसपेशियों को भी मजबूत करने में लाभकारी है और इससे छाती खुलती है। इस प्रक्रिया में मांसपेशियों को आराम मिलता है।

- *पवनमुक्तासन*

स्रोतः अज्ञात, किन्तु यह पारंपरिक अवस्था है।

संक्षिप्त तकनीक

पैरों को एक साथ जोड़कर चित्त लेट जाएं और हाथ को शरीर के बगल में रखें, हथेलियों को जमीन पर रखें। दोनों पैरों को पेट के ऊपर से मोड़ें। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में जोड़कर घुटने को पकड़े और इसे पेट पर दबाएं। सांस छोड़ते समय सिर उठाएं और इसे घुटने को स्पर्श करने दें।

विधि और निषेध

इससे उदर के निचले भाग में दबाव पड़ता है और सिकुड़न होती है इसलिए इसका ध्यानपूर्वक अभ्यास करें। यदि पीठ में कोई शिकायत हो या किसी रोग से पीड़ित हों तो इसका अभ्यास नहीं करें।

लाभ

इस आसन से पाचन शक्ति बढ़ती है और इससे उदर संबंधी विकार जैसे पेट खराब और कब्जियत से निवृत्ति मिलती है।

- *विपरीतकरणी*

स्रोतः घेरण्ड संहिता III:31.

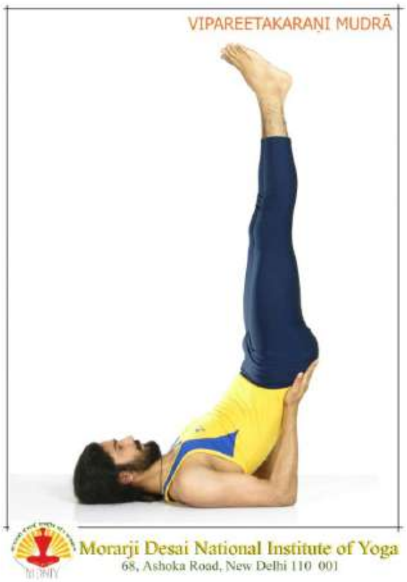

संक्षिप्त तकनीक

चित्त लेट जाएं। अपने दोनों पैरों को धीरे–धीरे 90 डिग्री तक उठाएं। कुछ समय तक इसी स्थिति में बने रहें। हाथों को जमीन पर दबाकर रखें और दोनों पैरों को सिर की ओर ले जाएं, नितम्ब को उठाएं।

नितम्ब को सहारा देने के लिए संतुलन बनाएं और अपने हाथ उठाएं। अपने पैरों को सीधा रखें।

वापस आते समय पैरों को सिर की ओर थोड़ा ले जाएं, हाथों को जमीन पर रखें और धीरे–धीरे नितम्बों को जमीन पर रखें।

विधि और निषेध

विपरीतकरणी का अभ्यास आरंभ करने से पूर्व उत्तानपादासन का अभ्यास करें। पैर और नितम्ब को उठाते समय या वापस आते समय झटका नहीं लें। हथेलियों पर अत्यधिक जोर नहीं दें।

लाभ

आंत रोग, अपच में फायदेमंद है।

इससे शरीर में बेहतर रक्त संचार होता है।

- *अर्द्ध मत्स्यासन*

अपनी पीठ के बल सीधा लेट जाएं – घुटने को सीधा रखें, पैर और पांव को एक साथ रखें। हाथों को जांघ की बगल में रखें, हथेलियां नीचे की ओर रखें, अपनी कोहनियों और बांह के अगले भाग को कमर के निचले हिस्से के दोनों और फंसाकर रखें और इन्हें धीरे–धीरे जमीन पर दबाकर सुदृढ़ रखें। अपनी छाती को उठाएं और सिर को जमीन से दूर रखें; जब तक आप आधा नहीं बैठ जाएं अपनी छाती को गोलाकार आकृति में रखें। तत्पश्चात् अपने सिर को जमीन की ओर वापस छोड़ें। इस बात को सुनिश्चित करें कि आपके पैर सीधे रहें।

4.4.5 क्रियाएं

सारे योग शिक्षण का लक्ष्य यह बताना है कि मन को किस प्रकार केन्द्रित किया जाए, इसके छिपे हुए पहलुओं का किस प्रकार पता लगाया जाए और आभ्यंतरिक आध्यात्मिक वृत्तियों को किस तरह जागृत किया जाए।

- ***शुद्धि***

  शुद्धि अथवा 'शोधन' योग की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है अर्थात् *शौच, नाडीशुद्धि, घटशुद्धि, चितशुद्धि* कुछ ऐसे सुपरिचित पद हैं जिनका प्रयोग 'शोधन' की संकल्पना के निरूपक के रूप में किया जाता है। शाब्दिक अनुवाद के आधार पर 'शोधन' से आंतरिक *शुद्धि अथवा शुद्धिकरण* अभिप्रेत हैं। किन्तु व्यापक अर्थ में इसमें अनुकूलन अथवा सुदृढ़ीकरण भी शामिल है।

  शोधन की अवधारणा को घेरंड संहिता में इस प्रकार, सुस्पष्ट किया गया है:–

  > *'जिस प्रकार बिना पकाए गए मिट्टी के पात्र जल में टूटकर बिखर जाते हैं, वही स्थिति हमारे शरीर की है। इसलिए शरीर को योग की अग्नि में तपाएं ताकि यह परिशुद्ध और सबल हो जाए।'*

लाभ

षट्कर्म का भौतिक और शक्ति–शरीरों (कोष) दोनों के भीतर शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है और इनका त्रिदोषों (वात, पित, कफ) पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। 'प्राणायाम के साधक षट्कर्म का आश्रय लेते हैं।'

अगर कोई व्यक्ति त्रिदोष के असंतुलन से पीड़ित है तो उसे स्वच्छता की प्रक्रियाओं का आश्रय लेकर शरीर का शुद्धीकरण करना चाहिए। हठ प्रदीपिका के अनुसार, यदि त्रिदोष बिल्कुल साम्य अवस्था में होते हैं तो इनके अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है।

- ***जल नेति***

  स्रोतः हठ योग का यह अभ्यास परंपरा से चला आ रहा है।

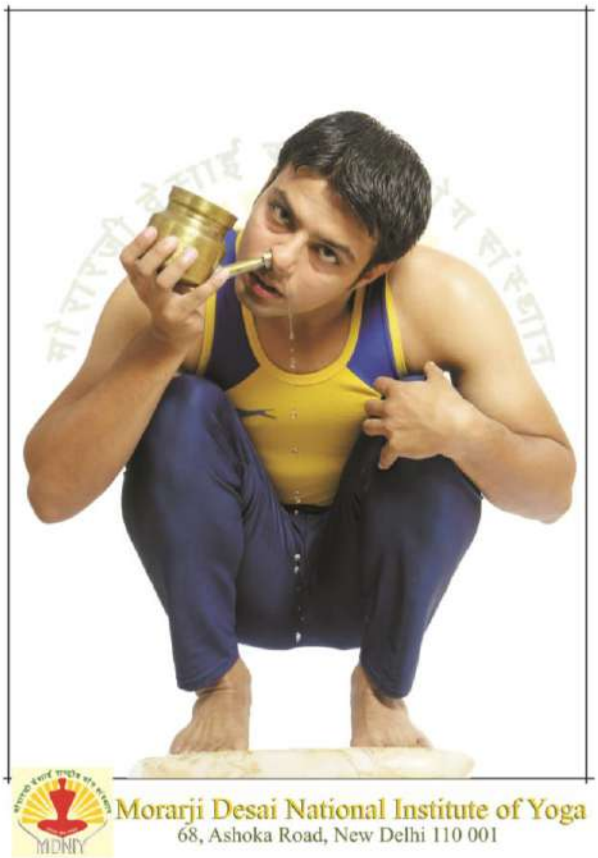

संक्षिप्त तकनीक

नमकीन जल से भरा हुआ कोई स्वच्छ नेति पात्र तैयार रखा जाना चाहिए। मुख बिल्कुल खुला रखें ताकि व्यक्ति निर्विघ्न रूप से श्वसन क्रिया जारी रख सके। पात्र के नोजल को नासिका में घुसाइए और पात्र को ऊपर उठाते हुए सिर झुकाइए ताकि एक नासिका से जल भीतर जाए और दूसरी नासिका से बाहर आ जाए। लगभग 30 सेकण्ड के बाद पात्र को नीचे रखिए और नाक को साफ कीजिए। यह प्रक्रिया दूसरी नासिका के साथ दोहराइए। कपालभाति करके नाक को साफ कीजिए।

विधि और निषेध

नाक को सुखाने के लिए जल नेति के बाद कपालभाति किया जाता है।

पहले एक नासिका छिद्र बंद कर श्वास लीजिए और फिर दूसरे से और फिर दोनों नासिका छिद्रों से खुलकर सांस लीजिए।

लाभ

जल नेति से घ्राण–तंत्र संबंधी क्षेत्र से कीटाणु दूर हो जाते हैं। यह थकान, नासिका–छिन्द्रों की सूजन, कण्ठ–शूल, नेत्र और गले की सूजन, टॉंसिल, सरदर्द, अनिद्रा आदि से निवृत्ति दिलाती है। सांस की अन्य बीमारियां जैसे कि दमा, श्वासनली की सूजन, निमोनिया आदि को दूर करने में जल नेति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

- *सूत्र नेति*

स्रोतः पारंपरिक रूप से यह कपास के सूत्र को सावधानीपूर्वक मोड़कर और मधुमक्खी से बने मोम में डुबोकर किया जाता था। किन्तु अब एक पतले रबड़ के कैथेटर का प्रयोग किया जाता है। सूत्र नेति सप्ताह में एक बार की जा सकती है और उसके बाद जल नेति का सहारा लिया जा सकता है।

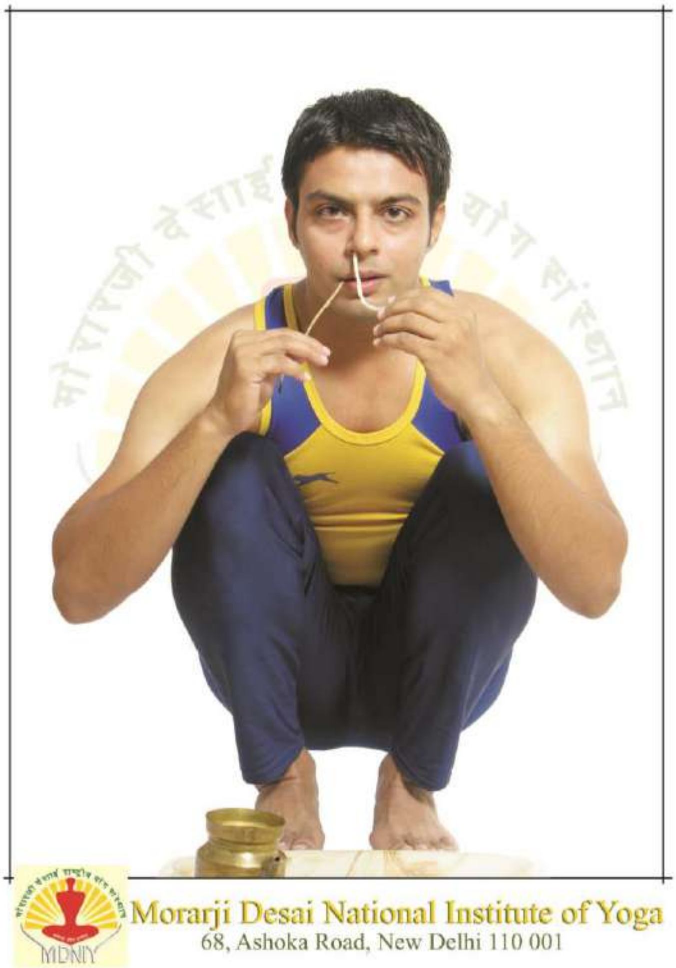

संक्षिप्त तकनीक

बहुत धीरे से सूत्र को बांए नथुने में तब तक अन्दर करते रहें, जब तक ऐसा महसूस न हो कि यह गले के पीछे आ गया है। तत्पश्चात् अंगुलियां डालकर गले तक पहुंचें और सूत्र को मुख से बाहर निकालें। धीरे से सूत्र को आगे–पीछे खींचें। ऐसा 5 से 10 बार करें और इसे बाहर निकालें। दूसरे नथुने में भी ऐसा ही करें।

लाभ

इस योगाभ्यास से दोनों नासिका छिद्रों में होने वाले वायु के प्रवाह में संतुलन कायम रखने में सहायता मिलती है। वायु मार्गों की घर्षणयुक्त मसाज होने से झिल्लियों को मजबूती मिलती है और वे अपेक्षाकृत अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने लगती हैं। इससे फेफड़े में प्रविष्ट होने वाली वायु अति स्वच्छ, गर्म, आर्द्र और संक्रमण रहित हो जाती है ताकि फेफड़े में प्रविष्ट होने वाली वायु इष्टतम स्थिति में रहे।

- *कपालभाति*

स्रोतः हठ प्रदीपिका II:236

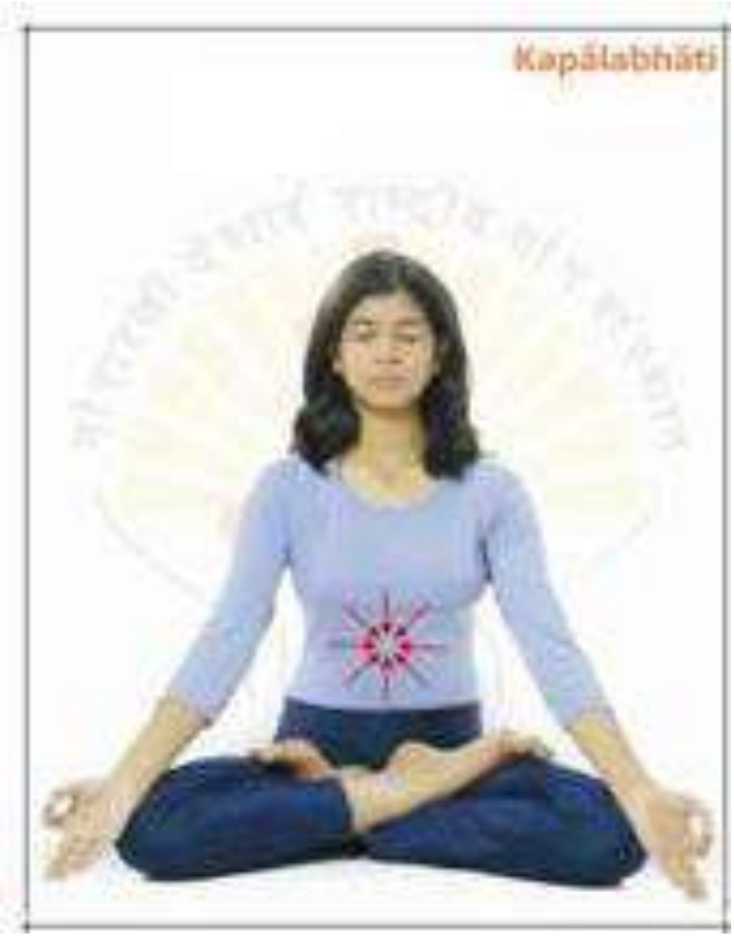

संक्षिप्त तकनीक

सीधे बैठें। गहरी सांस लें। बलपूर्वक इस प्रकार सांस बाहर निकालें कि उदर सिकुड़कर वायु बाहर निकाले। श्वास लेते समय कोई अतिरिक्त प्रयास न करें। निष्क्रिय श्वसन के माध्यम से वायु शरीर में प्रविष्ट होगी। यह कपालभाति का एक चक्र है। प्रति सेकण्ड 1 या 2 बार ऐसा करते हुए 20 से 30 बार इसी पद्धति को दोहराएं। धीरे–धीरे इसकी आवृति को बढ़ाकर 120 बार तक ले जाएं। एक अभ्यास सत्र में व्यक्ति एक से तीन बार ऐसा कर सकता है।

विधि और निषेध

श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालें परन्तु सांस लेते समय कोई अतिरिक्त प्रयास न करें।

सांस छोड़ने के दौरान छाती/कंधा न हिलाएं।

चेहरे के संकुचन का परिहार किया जाना चाहिए।

लाभ

इससे हृदय और फेफड़े की क्षमता में सुधार होता है और इसलिए यह दमा के लिए उत्तम है। इससे पूरे शरीर के भीतर रक्त प्रवाह में सुधार होता है, पेट की मांसपेशियां सशक्त होती हैं। इससे आलस्य दूर होता है।

4.4.6 मुद्रा

- ***ब्रह्म मुद्रा***
  स्रोतः अज्ञात किन्तु यह परंपरा बहुत पुरानी है। इस अभ्यास में सृजनहार अर्थात् ब्रह्मा के चतुर्मुख की नकल की जाती है।

संक्षिप्त तकनीक

अपने मेरुदण्ड को सीधा रखकर पद्मासन या किसी अन्य सहज स्थिति में बैठें। गर्दन सीधी रखकर सामने की ओर देखें। धीरे–धीरे चेहरे को दाहिनी दिशा में मोड़ें और ठुड्डी को कंधा हिलाए बगैर दायें कंधे के समीप लाएं। कुछ समय तक ऐसी ही अवस्था में रहकर चेहरे को सामने लाएं। इसी प्रकार, चेहरे को बायीं दिशा में मोड़ें। इसके बाद, धीरे–धीरे सिर को पीछे की ओर लाएं। पुनः थोड़ी देर पीछे आने के पश्चात् धीरे–धीरे चेहरे को नीचे लाएं और ठुड्डी को गले के नीचे छोटे से गड्ढे (जुगुलर नॉच) से स्पर्श होने दें। धीरे–धीरे वापस आएं।

विधि और निषेध

सर्वाइकल स्पांडलाइटिस से पीड़ित व्यक्तियों को सिर को आगे मोड़ने से परहेज करना चाहिए।

लाभ

इससे गर्दन और पीठ का दर्द दूर होता है और तनाव मुक्ति के लिए भी यह रामबाण है।

4.4.7 प्राणायाम

- ***अनुलोम विलोम प्राणायाम***

  स्रोतः हठप्रदीपिका II: 7-10

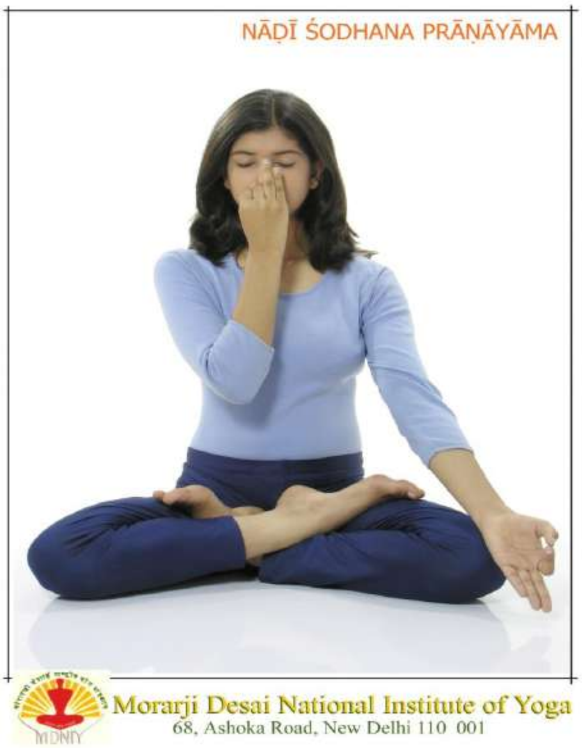

संक्षिप्त तकनीक

योग के अनुसार, शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दोनों नासिका छिद्रों का इष्टतम रूप से कार्यशील रहना अनिवार्य है और दोनों नासिका छिद्र एकसमान रूप से खुले रहने चाहिएं। आमतौर पर, अधिकांश व्यक्तियों को तब तक इस बात का पता नहीं चल पाता है जब तक कि उन्हें ऐसा प्रशिक्षण नहीं दिया गया हो। यह अदल–बदल कर किया जाने वाला प्राणायाम है जो योग की भाषा में "अनुलोम विलोम" नाम से प्रचलित है। इस प्राणायाम से शरीर के भीतरी तंत्र में सन्तुलन स्थापित होता हैं। इसे "नाडी शोधक" अथवा मलशोधक भी कहा जाता है। मल से 'अशुद्धि' अभिप्रेत है और ऐसी मान्यता है कि प्राणायाम से वे सभी विकार दूर हो जाते हैं जिनसे त्रिदोष की उत्पत्ति होती हैं।

पूरक – अनुलोम–विलोम प्राणायाम में साधक पहले बायीं नासिका के माध्यम से सांस लेता है। सांस लेते समय छाती द्वारा कार्य किया जाना होता है। नियंत्रित श्वसन के दौरान योग सीखने वालों को अपनी छाती फुलानी पड़ती है।

रेचक – इस पूरक के बाद दाहिनी नासिका से श्वास छोड़ा जाता है। श्वास छोड़ते समय किसी भी स्थिति में साधक को अपने फेफड़ों से नियंत्रण नहीं हटाना चाहिए।

पूरक – इस नियंत्रित उच्छ्वसन के बाद उसी नासिका छिद्र से श्वास लिया जाता है, जिससे श्वास छोड़ा गया हैं। पूरक का अभ्यास इससे पूर्व वर्णित पद्धति से ही किया जाना चाहिए।

रेचक – नियंत्रित श्वास–ग्रहण के बाद फेफड़े से नियंत्रण हटाए बगैर बाएं नासिका छिद्र से उच्छ्वसन किया जाता है।

यह एक बार की अनुलोम–विलोम प्रक्रिया है। इसका अभ्यास करने के क्रम में स्मरण रखना चाहिए किः–

1. श्वास लेने का कार्य बाएं नासिका छिद्र से आरंभ किया जाएगा।
2. जिस नासिका छिद्र से श्वास लिया गया है, उस नासिका छिद्र का प्रयोग श्वास छोड़ने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।
3. श्वास छोड़ने के लिए जिस नासिका छिद्र का प्रयोग हुआ है। श्वास ग्रहण के लिए उसका ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

विधि और निषेध

प्राणायाम के सामान्य सिद्धांतों को अपनाएं।

लाभ

इस प्राणायाम से सभी रक्त नालिकाओं अर्थात् नाडियों की शुद्धि में मदद मिलती है। श्वासनली साफ हो जाती है जिसके फलस्वरूप श्वसन सुगम और लंबे समय तक चलता रहता है। यह ऊर्जा के महत्त्वपूर्ण स्रोतों को भी स्वच्छ करने और उसमें नवजीवन का संचार करने में भी सहायक है। इस प्राणायाम का अभ्यास करने से मस्तिष्क शांत और निर्मल हो जाता है और मानसिक विकार और भय दूर होते हैं।

- ***उज्जायी प्राणायाम***
  स्रोतः हठप्रदीपिका II: 51, 52

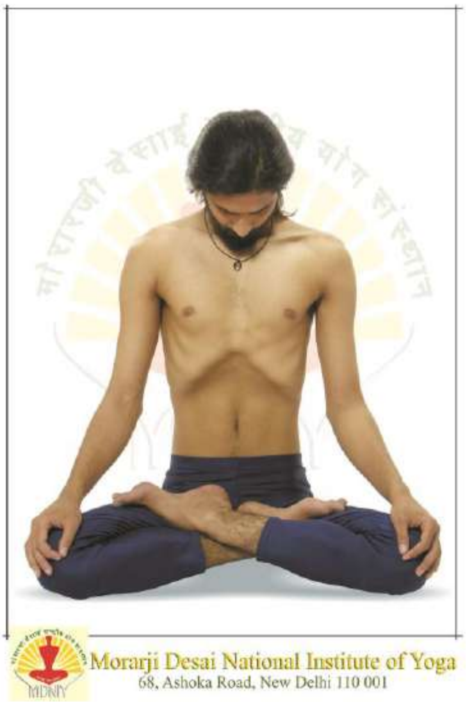

संक्षिप्त तकनीक

पूरक– प्रथम पूरक सहित प्रत्येक पूरक पूर्ण उच्छ्वसन से आरंभ होता है। उज्जायी में दोनों नासिका छिद्रों के माध्यम से श्वास लिया जाता है। वायु को अंदर प्रविष्ट कराते समय छाती कार्य–प्रवृत्त रहती है। नियंत्रित श्वसन के दौरान योगी को अपनी छाती फुलानी पड़ती है। श्वास ग्रहण करने के क्रम में हर समय कण्ठ द्वार अंशतः बन्द रहता है। कंठद्वार के आंशिक रूप से बंद होने से गले में निरंतर सर्प के

फुफकारने जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है। श्वास–ग्रहण और उच्छ्वसन की पूरी प्रक्रिया सुचारू और समरूप होनी चाहिए।

रेचक – उज्जायी में उच्छ्वसन बाएं नासिका छिद्र से किया जाता है। रेचक के किसी भी चरण में साधक को अपने फेफड़े का नियंत्रण नहीं खोना चाहिए। पूरे प्रक्रम में कण्ठद्वार आंशिक रूप से बन्द होना चाहिए और एक समान घर्षण जैसी आवाज उत्पन्न होनी चाहिए।

विधि और निषेध

ध्वनि सुचारु और निर्बाध होनी चाहिए।

लाभ

पाठ्यपुस्तक के अनुसार, इससे 'धातुओं' में असंतुलन के कारण उत्पन्न सभी रोगों से निवृत्ति मिलती है।

- ***सीतकारी प्राणायाम (दाँतों से सिसकारी)***
  स्रोतः हठप्रदीपिका II: 54

संक्षिप्त तकनीक

'सी–सी' का प्रयोग उस ध्वनि के लिए किया गया है जो अधखुले या पूर्णतः बन्द आगे के दांतों के माध्यम से सांस लेने से उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में जिह्वा के अग्रभाग से वायु के दबाव और ध्वनि को नियंत्रित किया जाता है।

विधि और निषेध

सीतकारी का अभ्यास केवल ग्रीष्म ऋतु में करें।

लाभ

इससे कुल मिलाकर शीतलता का अनुभव होता है। इससे सुस्ती और आलस्य दूर होता है।

कार्यकलाप 17

1. विद्यार्थियों और शिक्षकों को प्रायोगिक योग के व्यवहार्य/अनुदेशात्मक पहलुओं से संबंधित महत्त्वपूर्ण विषय पर एक समनुदेशन (आलेख) प्रस्तुत करने के लिए कहा जाना चाहिए।

4.5 सारांश

प्रायोगिक पाठ्यचर्या की इस यूनिट की विषय सूची में आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा, शुद्धिक्रिया और ध्यान की सभी अनिवार्य उन्नत तकनीक को शामिल किया गया है। विद्यार्थियों और शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे उल्लिखित पद्धति का अभ्यास इस तरीके से करें कि पहले दो दिनों में दस अभ्यासों में निपुण हो जाएं जिससे प्रथम सप्ताह के दौरान अन्य साधनाओं को धीरे–धीरे जोड़कर साधना को श्रेण्य और प्रायोगिक बनाए जाने पर जोर दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात् शेष सत्रों के दौरान प्रवीण प्रशिक्षक अथवा योग शिक्षक की सूझबूझ से प्रायः सभी साधनाओं का अभ्यास किया जाता है।

विद्यार्थी–शिक्षक से सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों अथवा उन्नत योगियों के कुशल व स्वस्थ जीवन हेतु एक प्रोजेक्ट फाइल (अनुदेश सहित योगाभ्यास के चित्र दर्शाते हुए) तैयार करने की अपेक्षा होनी चाहिए।

4.6 इकाई के अन्त में प्रश्न/क्रियाकलाप

1. प्राणायाम की साधना प्रारंभ करने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए पी.के.आर की अनुशंसित विधि क्या है?
2. षट्कर्म का नाम लिखें। मानसिक–शारीरिक विकृतियों पर काबू पाने से होने वाले लाभ का उल्लेख करें।
3. ध्यान करते समय कौन से आसन सर्वाधिक उपयोगी और आरामदायक हैं?

संस्थाबद्ध प्रशिक्षण हेतु दिशानिर्देश

प्रस्तुत मॉड्यूल का उद्देश्य स्व–शिक्षण से है। तथापि कुछ ऐसे पहलू हैं, जिन्हें योग संस्थाओं में भलीभांति सीखा जा सकता है। इसलिए यह संस्तुति की जाती है कि अध्यापक शिक्षा संस्थाएं में ऐसी व्यवस्था करें, जिससे एक निश्चित अवधि के लिए छात्र–अध्यापक किसी योग संस्थान से अंतरंग व्यवस्था के रूप में जुड़ जाएं। यह समय व संसाधनों की उपलब्धता और उपयुक्तता पर निर्भर करता है। अतः यह अंतरंग प्रशिक्षण कुछ दिनों या कुछ सप्ताहों के लिए हो सकता है। एक अंतरंग प्रशिक्षु के रूप में आप अपने अनुभवों व प्रेक्षणों को डायरी में टिप्पणी सहित रिकार्ड करें और निम्नलिखित का विश्लेषण करें:

- योग संस्कृति योग प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसे पुस्तकों से नहीं सीखा जा सकता है। अंतरंग प्रशिक्षु को उन परिपाटियों/पद्धतियों, मंत्रों और उसके मूल्य का अवलोकन करना चाहिए जिनका आदान–प्रदान उस संस्था के सदस्यों द्वारा किया जा रहा हो, जहां अंतरंग प्रशिक्षु एक अंतरंग प्रशिक्षु के रूप में कार्य कर रहा है। यह अंतरंग व्यवस्था व्यक्ति को यौगिक संवर्धन की ओर उन्मुख करेगी।

- अंतरंग प्रशिक्षु को योग संस्था के उपागम का अवलोकन करना चाहिए। योग एक व्यापक विषय है। योग में बहुत से संप्रदाय और पद्धतियां शामिल हैं। प्रत्येक संप्रदाय एक विशेष दर्शन का अनुकरण करता है। अंतरंग प्रशिक्षु धीरे–धीरे उस रूपरेखा को सीख जाता है, जिसमें वह संस्था कार्य कर रही है। इससे अंतरंग प्रशिक्षु को उस विशिष्ट दर्शन और संबंधित क्रियाओं के बारे में समझने में सहायता मिलेगी। इसके साथ–साथ अंतरंग प्रशिक्षु को उसकी अपने कार्य की उस रूपरेखा को विकसित करने में भी सहायता मिलेगी जो उसके लिए अधिक उपयुक्त हो सकती है।

- अंतरंग प्रशिक्षु को उस योग संस्था द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यप्रणाली पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस कार्यप्रणाली में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरीके हो सकते हैं, तथा आपको एक अंतरंग प्रशिक्षु के रूप में इन तरीकों को सीखना चाहिए। इससे आपको अपनी स्वयं की कार्यप्रणाली विकसित करने में सहायता मिलेगी।

- अंतरंग प्रशिक्षु को गुरु–शिष्य परंपरा वाले पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। पुस्तकों से तो व्यक्ति सिद्धान्त और तकनीक सीख सकता है, परंतु यौगिक क्रियाओं के उन सूक्ष्म पहलुओं का ज्ञान नही होता जिन्हें 'गुरु–शिष्य परम्परा' से सीखा जा सकता है। योग एक आध्यात्मिक विषय है, जिसके लिए गुरु और शिष्य के बीच निकट सान्निध्य में ज्ञान संचरण होने की आवश्यकता होती है। इस संबंध में शिष्य में आदर, प्रतिबद्धता, समर्पण और आज्ञाकारिता जैसे गुणों का होना आवश्यक है।

- अंतरंग प्रशिक्षु को संस्था में योग कक्षाओं की व्यवस्था तथा अन्य कार्यकलाप का ध्यान से अवलोकन करना चाहिए, जिससे वह बाद में योग कक्षाओं और अन्य संबंधित कार्यकलापों को सुचारु रूप से संचालित कर सकता है।

- इस प्रकार के अंतरंग प्रशिक्षण के माध्यम से आपको प्रमुख आवश्यक अनुभव प्राप्त करना चाहिए। यदि हो सके तो आपके अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से, अथवा बाद में भी यह अनुभव लिया जा सकता है। इससे आप योग शिक्षा को और आगे विकसित करने में समर्थ हो सकेंगे तथा आपने इस मॉड्यूल के माध्यम से जो कुछ सीखा है, इससे भी अधिक आप कर सकते हैं, और आपके अध्ययन पाठ्यक्रम के दौरान शारीरिक शिक्षा/योग शिक्षक ने जो कुछ भी आपको सिखाया है, उस ज्ञान को आगे विकसित कर सकते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

अभ्यास वैराग्य योगः प.यो.सू. में एक प्रकार की यौगिक क्रिया जिसमें आस–पास के लौकिक जगत् के प्रति सकारात्मक उदासीनता का भाव जाग्रत करने के लिए आत्मीय योग पर बल दिया जाता है।

अग्नि धातुः जठराग्नि जिससे खाद्य पदार्थ के परिपाचन और पाचन क्रिया में सहायता मिलती है।

आमः कमजोर/निःशक्त जठराग्नि के कारण काया में संग्रहित विषाक्त पदार्थ।

आधिः मन के रोग/की विकृतियों को आधि की संज्ञा दी जाती है। आधि का तात्पर्य विभिन्न मानसिक विकृतियों से है।

अपरिग्रहः सांसारिक चीजों की जमाखोरी नहीं करना और इसकी अभिवृत्ति।

अष्टांग योगः पातंजल योग जिसमें आठ अंग/संघटक अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि शामिल हैं। इस योग का प्रतिपादन महर्षि पतंजलि ने ''योग सूत्र'' नामक गंथ में किया।

अविद्याः वास्तविक और अवास्तविक में भेद की अनभिज्ञता।

बस्तिः उत्सर्जन तंत्र के कोलन भाग के प्रक्षालन की यौगिक प्रक्रिया।

धौतिः विभिन्न माध्यमों से शरीर की कोटरिकाओं (cavity) के प्रचालन की योग विधि।

व्याधिः रोग – एक विशेष प्रकार की आसामान्य स्थिति है, संरचनात्मक अथवा प्रकार्यात्मक दोष जिससे कोई जीव आंशिक रूप से अथवा पूर्णरूपेण दुष्प्रभावित होता है।

त्रिदोषः वात, पित्त, कफ।

स्वास्थ्यः यद्यपि व्यक्ति में रोगों के अभाव को व्यक्ति के स्वास्थ्य को निरूपित किया जाता है, तथापि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयामों को इसमें जोड़ देने से स्वास्थ्य का अभिप्राय और भी अधिक सार्थक हो जाता है। इसका अभिप्रायः मात्र शारीरिक रोगों से मुक्ति नहीं है, अपितु इसमें हमारे व्यक्तित्त्व के अन्य आयामों का स्वास्थ्य भी सम्मिलित है।

ईश्वर प्रणिधानः ईश्वरीय शक्ति के समक्ष पूर्ण समर्पण की भावना/प्रकृति।

कपालभातिः बालात् उच्छ्वसन के बाद अप्रयास अन्तः श्वसन जिसमें नाभि के अधोक्षेत्र पर दबाव डाला जाता है।

कफः शारीरिक बलगम। कफ वह संयोजक चिकना पदार्थ है जो सभी चीजों को एक साथ जोड़कर रखता है और यह ऐसी उपापचयी ऊर्जा है जिससे उत्पादी और पुनरुत्पादी प्रक्रियाओं में सहायता मिलती है।

नौलिः एक योगाभ्यास है जिससे उदर के अधोभाग का आभ्यंतरिक मसाज (मर्दन) होता है जिससे आंतों से जुड़े अंगों को जकड़न से मुक्ति मिलती है।

नेतिः पानी या रबड़ के कैथेटर के माध्यम से नाक के म्यूकस की सफाई करने की प्रक्रिया।

पित्तः शरीर में ताप के कारण स्रावित द्रव्य। यह उपापचयन की ऊर्जा है जो पाचन के लिए अनिवार्य है।

रसः दुग्ध जैसा श्वेत द्रव्य जो पाचन क्रिया के दौरान छोटी आंत से लिम्फैटिक तंत्र में बहकर जाता है। सप्त धातु हैः – वसा, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि और शुक्र।

संन्यास: आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सांसारिक माया मोह का परित्याग।

संयम योग: धारणा, ध्यान और समाधि के एक साथ मिलने का योग।

स्वाध्याय: आध्यात्मिक/धार्मिक कृतियों का स्वाध्याय/स्वयं के बारे में चिन्तन, मनन।

तपस्: स्थूल जगत से सूक्ष्मता की ओर अभिमुख और इस पथ पर अग्रसर होने की तैयारी में मानसिक–शारीरिक अनुकूलन का योगाभ्यास।

त्राटक: बिना पलक झपकाए मोमबत्ती की लौ अथवा किसी अन्य बिन्दु पर तब तक देखते रहना जब तक कि कपोलों से होकर आंसू नहीं बहने लगें।

वात: शरीर में विद्यमान वायु। यह शरीर की ऐसी ऊर्जा है जो हवा की तरह बहती है और शरीर के भीतर प्रवाह उत्पन्न करती है।

व्याधि: शारीरिक रोग।

कुशलता (सुखानुभूति): कुशलता शब्द का प्रयोग व्यवहारवाद में एक गतिशील शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कुशलता के लिए किया जाता है जिससे व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हुए स्वस्थ और आनन्ददायी जीवन व्यतीत कर पाता है।

योग दर्शन: योग का दर्शन जिससे हमें मन–मस्तिष्क की जटिलताओं के भंवर से ऊपर उठकर सत्य को समझने में सहायता मिलती है।

योग वासिष्ठ: गुरु वसिष्ठ द्वारा लिखित हठ योग की कृति।

पठन–सुझाव

Anantharaman, T.R. (1996). *Ancient Yoga and Modern Science*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers Pvt Ltd.

Bhavanani, A.D. (2008). *A Primer of Yoga Theory*. Pondicherry: Dhivyananda Creations, Iyyangar Nagar.

Bhogal, R.S. (2010). *Yoga & Mental Health & Beyond*. Lonavla: Kaivalyadhama SMYM Samiti,

Bhogal, R.S. (2011). *Yoga & Modern Psychology*. Lonavla: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Bucher, Charles A. (1975). *Foundation of Physical Education*. (St. Louis: The C.V. Mosby Co.).

Devi, I. (1987). *Yoga, The Technique of Health and Happiness*. Bombay: Jaico Publishing House.

Digambar ji, Swamī & Gharote, M.L. (1978). *Gheraṇḍa Saṃhitā*. Lonavala: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Digambarji, Swamī & Kokaje, R.S. (1971). *Haṭhapradīpikā*. Lonavala: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Goel, A. (2007). *Yoga Education, Philosophy and Practice*. New Delhi: Deep and Deep Publications.

http//www.wikipaedia.com

Karambelkar, P.V. (1984). *Pātañjala Yoga Sūtra*. Lonavala: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Karambelkar, P.V. (1987). *Pātañjala Yoga Sūtra*. Lonavala: Kaivalyadhama, SMYM Samiti.

Kuvalayānanda, Swamī & Vinekar, S.L. (1963). *Yogic Therapy*. Lonavala: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Kuvalayānanda, Swamī (1933). *Āanas*. Lonavala: Kaivalyadhama SMYM Samiti.

Kuvalayananda, S. & Vinekar, S.L. (1963). *Yogic Therapy: Its Basic Principles and Methods.* New Delhi: Ministry of Health and Family Welfare.

Nath, S.P. (2005). *Speaking of Yoga*. New Delhi: Sterling Publishers.

Swami Satyānanda (1999). *Four Chapters on Freedom. Commentary on Yoga Sūtras of Patañjali Saraswathi*. Bihar School of Yoga, Munger.

Yadav, Y.P. & Yadav, R. (1998). *Art of Yoga*. Friends Publications, India.

विचारणीय प्रश्न

1. योग के जनक कौन थे? मानव को योग के बारे में विचार करने, इसका पता लगाने और इसे विकसित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? (उपनिषदों में इन प्रश्नों का उत्तर दिए जाने का प्रयास किया गया है हालांकि वे पारलौकिक हैं)
2. क्या धर्मग्रथों के अनुसार योगाभ्यास करने के फलस्वरूप कोई व्यक्ति तत्काल पूर्णरूपेण रूपान्तरित अवस्था में पहुंच सकता है? (पतंजलि से पूर्व और पतंजलि के बाद रचित धर्मग्रंथों से हमें बहुत अधिक सहायता मिल सकती है)
3. क्या हम अपनी सभी सांसारिक कामनाओं, प्रवृत्तियों, अहम् भाव, क्लेश और संस्कारों को त्याग कर इससे आगे बढ़ सकते हैं? (सैद्धांतिक रूप से, हां, किन्तु व्यवहार में केवल निरंतर योगाभ्यास के माध्यम से ही ऐसी दिशा, योग्यता और अवस्था प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है)
4. घटस्थ योग और पतंजलि योग में क्या अन्तर है?
5. किस आधार पर आप यह मानते हैं कि पतंजलि योग और हठ योग एक–दूसरे के पूरक हैं?
6. अष्टांग योग के किन संघटकों को क्रिया योग की संज्ञा दी जाती है और क्यों?
7. 'मन' का परिचायक शरीर' सिद्धान्त और 'शरीर का परिचायक मन' सिद्धांत पद की विवेचना कीजिए।
8. आप अपने सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन में कैसे संतुलन बनाए रखेंगे?
9. एक स्वस्थ और संतुलित जीवन व्यतीत करने में योग किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है?

कार्यकलाप के सांकेतिक उत्तर

कार्यकलाप 1

1. योगः कर्मसु कौशलम् से तात्पर्य है कि जिससे कर्म में कौशल (दक्षता) मिलती है, वही योग है।

कार्यकलाप 2

- योग को विश्वास, उपासना अथवा वाद के रूप में मानते हुए तथा
- शारीरिक अभ्यास – एरोबिक्स तथा ऐनैरोबिक्स।

कार्यकलाप 3

1. मनुष्य को भौतिक पिंजड़े से मुक्त करने के लिए ब्रह्मांड के साथ एकत्व प्राप्त करने हेतु मन का प्रशिक्षण,
2. श्री अरबिन्दो, स्वामी विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण परमहंस।

कार्यकलाप 4

1. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि
2. यमः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
   नियमः शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान
3. आसनों को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया हैः संस्कारक, विश्रान्तिदायक तथा ध्यानात्मक।

कार्यकलाप 5

1. प्राणायाम को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया हैः संतुलन देने वाला, संवेदनशील बनाने वाला, शीतलता प्रदान करने वाला, स्पन्दन अथवा लय उत्पन्न करने वाला।

कार्यकलाप 6

1. कर्तव्य की भावना से कार्य करना।
2. कर्म के साथ सघन रूप से आसक्ति के बिना (ध्यान में केन्द्रित) कार्य करना।
3. कार्य के समय अपने मन में परिणाम के विषय में कभी चिन्ता न करना।
4. असफलता और सफलता को समान रूप से स्वीकार करना।

कार्यकलाप 7

1. योग के दो प्राचीन ग्रन्थ हैंः पतंजलि योग और हठयोग।
2. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि।

कार्यकलाप 9

1. पतंजलि योगसूत्र, हठप्रदीपिका, तथा हठरत्नावली।
2. नेति, धौति, नौलि, बस्ति, त्राटक और कपालभाति। तीन प्राणायाम हैं: नाडीशुद्धि, अनुलोम–विलोम और कुम्भक।

कार्यकलाप 10

1. मन को प्रभावित करने वाले शरीर का मतलब है जब मन शरीर पर प्रभाव डालता है तथा शरीर को प्रभावित करने वाले मन का मतलब है जब शरीर मन पर प्रभाव डालता है।

कार्यकलाप 11

1. किसी विशेष लक्ष्य पर लम्बे समय तक मन को एकाग्र रखना ध्यान है।
2. धारणा कम समय तक मन को एकाग्र रखना है और ध्यान लम्बे समय तक एकाग्र रखना है।

कार्यकलाप 12

1. शरीर की अपेक्षा मन उच्च स्तर पर होता है, इसलिए वह विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करता है, यदि मन में कोई व्यवधान आता है तो इसका शरीर पर विपरीत प्रभाव होता है, और यदि मन शान्त और शीतल होता है तो शरीर भी उचित दिशा में विकसित होता है।

कार्यकलाप 13

1. कृपया इकाई 3 का अनुच्छेद 3.3 देखें।

कार्यकलाप 14

1. कोष से 'खोल', 'कवच', 'कोठारी', 'लिफाफा', 'पर्दा', 'संदूक' आदि खजाना अभिप्रेत है। यह अस्तित्व के विभिन्न स्तरों से संबंधित है।
2. पांच कोष होते हैं जो निम्नानुसार हैं:–
   - अन्नमय कोष – पोषणः शारीरिक काया
   - प्राणमय कोष – शक्ति युक्त कायाः सूक्ष्म शरीर
   - मनोमय कोष – मानसिक कायाः सूक्ष्म शरीर
   - विज्ञानमय कोष – बौद्धिक कायाः सूक्ष्म शरीर
   - आनन्दमय कोष – प्रसन्न कायाः नैमित्तिक शरीर

कार्यकलाप 15

1. सर्वांगीण स्वास्थ्य से संपूर्ण स्वास्थ्य अर्थात् मस्तिष्क, शरीर और आत्मा का एकीकरण अभिप्रेत है।
2. कुशलता, मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक संतुलन की अवस्था है। एक स्वस्थ जीवन शैली को कायम रखना जिसमें संतुलित आहार, व्यायाम और समुचित विश्राम समाहित है, उत्तम स्वास्थ्य और कुशलता की स्थिति अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए ये निवारक उपाय है। योग विज्ञान में अनेक प्रायोगिक तकनीकों के साथ–साथ समुचित जीवन शैली के लिए सलाह भी है ताकि स्वास्थ्य और कुशलता की स्थिति बनी रहे। बहिरंग साधना यथा–यम, नियम, आसन और प्राणायाम तथा प्रत्याहार शारीरिक स्वास्थ्य में सहायक है जबकि अन्तरंग साधना अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि से प्रत्याहार के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य भी बना रहता है।

a, आ ā, इ i, ई ī, उ u, ऊ ū, ऋ ṛ, ॠ ṝ,

ए e, ऐ ai, ओ o, औ ou, ं m, : ḥ,

क् k, ख् kh, ग् g, घ् gh, ङ् ṅ,

च् c, छ् ch, ज् j, झ् jh, ञ् ñ,

ट् ṭ, ठ् ṭh, ड् ḍ, ढ् ḍh, ण् ṇ,

त् t, थ् th, द् d, ध् dh, न् n,

प् p, फ् ph, ब् b, भ् bh, म् m,

य् y, र् r, ल् l, व् v,

श् 's, ष् ṣ, स् s, ह् h.

राअशिप विनियम 2014ः विशिष्टताएं

राअशिप ने 15 कार्यक्रमों के लिए मानक व मापदंडों के साथ संशोधित विनियम 2014 को पूर्ण रूप से तैयार करके 28 नवम्बर, 2014 को अधिसूचित कर दिया, जिसमें भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार सरकार द्वारा गठित न्यायमूर्ति वर्मा आयोग की संस्तुतियों को कार्यान्वित करते हुए राअशिप ने 15 कार्यक्रमों के लिए मानक व मापदंडों के साथ संशोधित विनियम 2014 को पूर्ण रूप से तैयार करके 28 नवम्बर, 2014 को भारत सरकार के गजट अधिसूचना सं. 346 (फा.सं. 51–1/2014/राअशिप/एनएंडएस) में अधिसूचित करा दिया है। न्यायमूर्ति वर्मा आयोग ने अध्यापक शिक्षा में व्यापक स्तर पर सुधार करने के सुझाव दिए थे, जिन्हें नये विनियम 2014 के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है।

विनियम 2014 की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैंः

- 15 कार्यक्रमों के व्यापक पुलिन्दे का प्रस्ताव, जिसमें पहली बार तीन नए कार्यक्रमों से संबंधित मान्यता – 4 वर्षीय समेकित बी.ए./बी.एससी.बी–एड., 3 वर्षीय बी.एड (अंशकालीन) तथा 3 वर्षीय समेकित बी.एड. एम.एड. कार्यक्रम।
- तीन कार्यक्रमों की अवधि – बी.एड., बी.पी.एड. और एम.एड. तीनों कार्यक्रमों की अवधि 2 वर्ष तक बढ़ायी गई है, जिससे सर्वोत्तम अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुकूल इनको व्यावसायिक महत्त्व दिया गया है।
- अब से स्वतंत्र रूप से कार्यरत संस्थाओं के स्थान पर अध्यापक शिक्षा संबंधी समेकित संस्थाएं स्थापित की जाएंगी (बहु–विषयक या अनेक कार्यक्रमों से युक्त अध्यापक शिक्षा)।
- प्रत्येक कार्यक्रम संबंधी पाठ्यचर्या में तीन घटक होते हैं– सिद्धान्त, प्रयोगात्मक तथा अंतरंग अभ्यास तथा कम से कम 25 प्रतिशत कार्यक्रम (यानी 4 समेस्टर वाले बी.एड. में एक समेस्टर) स्कूल–आधारित कार्यकलापों और अंतरंग अभ्यास के लिए समर्पित होते हैं।
- आईसीटी, योगशिक्षा, लिंग व अशक्तता/समावेशी शिक्षा प्रत्येक कार्यक्रम पाठ्यचर्या के अभिन्न भाग हैं, जिन्हें 18000 से अधिक अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाया जाना है और 14 लाख से अधिक छात्र अध्यापक इनका अध्ययन करेंगे।
- और अधिक समेकित अध्यापक कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया गया है।
- अध्यापक प्रशिक्षक एम.एड. की उपाधि में या तो प्रारंभिक शिक्षा में विशेषज्ञता होती है या माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में।
- अन्तःस्थ गुणवत्ता प्रतिभूति तंत्र के साथ मुक्त तथा दूरवर्ती शिक्षण (ओडीएल) अधिक मजबूत हो गया है। इसके मानक व मापदंड सम्मिश्रित शिक्षण रूपरेखा के अन्तर्गत निर्धारण किए जाते हैं।
- आवेदन करते समय सम्बद्ध विश्वविद्यालय/संस्था से अनापत्ति प्रमाण पत्र अनिवार्य है।
- आवेदन पत्र, शुल्क का भुगतान, निरीक्षण टीम की रिपोर्ट आदि 'ऑन लाइन' व्यवस्था है। मुख्यालय तथा क्षेत्रीय समितियों द्वारा निरीक्षण/अनुश्रवण के लिए पारदर्शी प्रयोग हेतु केन्द्रीकृत कम्प्यूटरीकृत निरीक्षण टीम की व्यवस्था बनाई गई है। (इसके लिए ई–गवर्नेंस की प्रक्रिया क्रियान्वित की जा रही है)
- अध्यापक शिक्षा संबंधी प्रत्येक संस्था को राअशिप द्वारा मान्यताप्राप्त किसी भी प्रत्यायन एजेंसी से प्रत्येक 5 वर्ष में अनिवार्य प्रत्यायन प्राप्त करना होता है। (इस संदर्भ में एनएएसी के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए हैं।)